संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन सुब्रह्मण्यम
हृदयकात दीवान

सह संपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
विप्लव शशि
व्ही एम भोडे

सहयोग:
जया विवेक
बृजेश सिंह
रामभरोस यादव
महेश बसेडिया

शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक - 22-23, मार्च-जून 1998

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 35 रुपए
(1 अक्टूबर से वार्षिक शुल्क : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: सिकाडा, अमेरिका मे मिलने वाला एक कीट। 1998 सिकाडा वर्ष है यानी अपने 13 साल के जीवनकाल में इस वर्ष वे एक साथ बाहर निकल आए हैं। इन्हीं कीटो के व्यवहार आदि के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 9 पर।

पिछला आवरण: दक्षिण अफ्रीका के कलाहारी रेगिस्तान में रहने वाली एक जनजाति, कुग के लोग। इन शिकारी-सग्राहक समाजों के बारे मे बदल रहे नज़रिए का विश्लेषण पृष्ठ 32 पर।

इस अक मे विभिन्न किताबों मे लिए गए चित्र *प्री-हिस्टोरिक सोसायटीज़* लेखक· ग्राहम क्लार्क, प्रकाशक· पेग्विन, *मैन्स व्यू ऑफ द यूनिवर्स* लेखक गेराल्ड ई. टॉबर, प्रकाशक: क्राउन पब्लिशर्स न्यूयॉर्क, *द यूनिवर्स एक्सप्लेन्ड* लेखक. कोलिन रोनन, प्रकाशक: थेम्स एंड हडसन लिमिटेड; *एटमॉस्फियर, वेदर एंड क्लाइमेट* लेखक: रोजर बैरी एंड रिचर्ड कॉरले, प्रकाशक· इग्लिश लेग्वेज बुक सोसायटी; *कन्टेम्पररी क्लाइमेटोलॉजी* लेखक: ऐन हैन्डरसन, सैलर्स एंड रॉबिन्सन, प्रकाशक: इंग्लिश लेंग्वेज बुक सोसायटी , *जनरल क्लाइमेटोलॉजी* लेखक: हॉवर्ड जे क्रिचफील्ड, प्रकाशक. प्रेटिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, *होम्स प्रिंसिपल्स ऑफ फिज़िकल जियोलॉजी* प्रकाशक: चैपमेन एंड हॉल, *द मेकिंग ऑफ मेनकाइंड* लेखक· रिचर्ड लीकी।

मानव ससाधन विकास मत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
सदर्भ मे छपे लेखो मे व्यक्त मतो से मानव ससाधन विकास मत्रालय का सहमत होना आवश्यक नही है।

october 98

सदस्यता शुल्क बढ़ेगा

1 **अक्टूबर** 1998 से संदर्भ का सदस्यता शुल्क 35 रुपए से बढ़कर 50 **रुपए** (छह अंकों के लिए) सालाना हो रहा है।

सिर्फ सितम्बर 1998 तक उपलब्ध है नई सदस्यता उसी पुराने शुल्क पर 35 रुपए सालाना। एक बार में अधिकतम तीन साल के लिए शुल्क भेजा जा सकता है।

सदस्यता का नवीनीकरण भी **सितम्बर तक** सिर्फ 35 रुपए की दर से होगा।

पेज नंबर 7 भी देखिए

सिकाडा का मधुर संगीत 9

"कहा से आ रही थी आवाज़? कहीं मेरे कान तो नहीं बज रहे? प्रयोगशाला की ओर जाते हुए, मुझे आवाज़ का राज़ समझ आया। सिकाडा चारों तरफ मौजूद थे, हवा में, पेड़ों पर। यह सिकाडा वर्ष है – इन कीटों के 13 साल लंबे जीवनकाल का आखिरी वर्ष, जब वो अमरीका में बड़ी संख्या में दिखाई देंगे, बिलकुल उसी तरह जैसे एक प्रजाति के बांस एक ही समय पर फूल देने लगते हैं। कुछ रहस्य बरकरार है – कैसे मालूम पड़ता है इन सभी कीटों को कि आ पहुंचा है ज़मीन से बाहर निकलने का साल?"

हिरोशिमा से पोखरण तक 23

6 अगस्त 1915 – वो तारीख जब जापान के एक शहर हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया गया था। हर साल इस दिन दुनिया भर मे लोग इस विनाश को कहीं और न होने देने का संकल्प लेते है। अभी 11 मई को राजस्थान के पोखरण क्षेत्र मे एक बार फिर परमाणु परीक्षण हुआ। कुछ दिन बाद हिरोशिमा के कुछ लोग यहां आए और उन्होंने अपनी यादो, अनुभवों को इस इलाके के लोगो मे बांटा। इस यात्रा में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ज़्यो ड्रेज़ भी इनके साथ थे। उन्होंने इस पूरे वाकए की एक रिपोर्ट तैयार की। प्रस्तुत है यही रिपोर्ट।

मूल संपन्न समाज 32

आदि शिकारी-संग्राहक समाजों के बारे मे कई नृतत्वशास्त्रियों की धारणा रही है कि वो खासी विपन्नता में जी रहे थे, उन्हें हमेशा भोजन की तलाश में घूमते रहना पड़ता था। लेकिन अब यह धारणा बदल रही है। समझ में आ रहा है कि जिसे हम विपन्नता कह रहे थे वो दरअसल संपन्नता है। क्यों और कैसे? एक विश्लेषण।

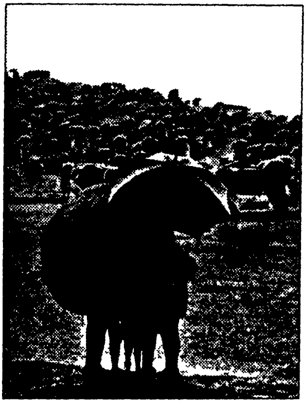

अबूझ पहेली, मॉनसून. .41

मॉनसून प्रकृति को जीवन देता है; लेकिन विज्ञान की तमाम कसरतों के बाद यह अभी भी अबूझ है। मॉनसून के बारे में हमारी समझ पर एक नज़र।

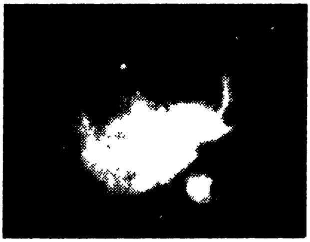

मेघनाथ साहा 70

1920 में जब मेघनाथ साहा का प्रसिद्ध पर्चा छपा तब वे 27 साल के थे। जल्द ही यह पर्चा तारों के वर्णक्रम को समझने का मुख्य आधार बन गया। लेकिन साहा का व्यक्तित्व विज्ञान से इतर भी काफी प्रभावशाली है। उन्हीं का जीवन वृतांत।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 22-23, मार्च-जून 1998

इस अंक में

आपने लिखा. 4

सिकाडा का मधुर संगीत 9
नीरज जैन

आवेश, चुंबक और कूलंब का 16
एस. बी वेलणकर

हिरोशिमा से पोखरण तक 23
प्रस्तुति: ज्यों द्रेज

मूल संपन्न समाज 32
मॉर्शल साहलिन्स

मॉनसून एक अबूझ पहेली, ... 41

बहुस्तरीय शिक्षण, स्थितियों 55
मुकेश मालवीय

चंद्रमा-1 66
अरविंद गुप्ते

तारों का वर्णक्रम और मेघनाथ साहा 70

आर्यभट, महान गणितज्ञ 77
गुणाकर मुळे

समुद्र सतह में उतार-चढाव 91
माधव केलकर

ज़रा सिर तो खुजलाइए. 102

जादुई तालाब की पहेली 104
विजय शंकर वर्मा

ये लाजवाब बच्चे 115
कमलेश चन्द्र जोशी

घर पर 121
एंटोन चेखव

बच्चे कैसे सीखते हैं 135
जॉन होल्ट

संदर्भ का हमेशा इंतज़ार रहता है। वेलणकर जी का लेख 'कहां बल और क्या ऊर्जा' अच्छा लगा, पर इसमें 'आप ज़रा इस सतह को देखिए' (पृष्ठ 15 पर) जैसे वाक्यों से उलझन पैदा होती है कि किस सतह को देखें जब कि साथ में कोई चित्र भी नहीं है। 'चांद का क्रेटर' और 'एटीपी एक सेतु भी पढ़े'। चांद के क्रेटर के बारे में जानकारी मज़ेदार लगी। शायद इस पर और चर्चा होती तो अच्छा रहता। सवालीराम से जो चुंबक वाला सवाल पूछा गया है वो काफी मज़ेदार है। रिंग मैग्नेट में दो ध्रुव तो होते हैं क्योंकि उसे बनाते समय ही इस प्रकार से चुंबकित किया जाता है कि एक सतह पर N ध्रुव और दूसरी पर S ध्रुव बन जाते हैं। पर जिस तरह से सवाल में छड़ चुंबक से बनाया गया गोल चुंबक है उस पर बात कुछ समझ नहीं आई। इसके जवाब का बेसब्री से इंतज़ार रहेगा।

पवन गुप्ता
इंदौर

जनवरी-फरवरी अंक पढ़कर लगा कि 'संदर्भ' में सिमटा ज्ञान आत्मसात करना अवर्णनीय अनुभव है।

ग्रेगर मेंडल की जीवनी पढ़ी। हमें यही प्रयोग कक्षा 8 में मटर के तने की लंबाई के आधार पर कराए गए थे। एक और प्रयोग फूलों के रंग से संबंधित था।

माधव केलकर द्वारा लिखित 'चांद के क्रेटर' बहुत अच्छा लगा। एस. बी. वेलणकर का लेख 'कहां बल और क्या ऊर्जा' भी काफी अच्छा लगा।

कुलविंदर सिंह
49, रानी बाज़ार, बीकानेर

अंक 21 मिला। इस अंक में कुछ सामग्री को छोड़कर लगभग सभी विज्ञान विषयों से जुड़ी हुई है।

इस अंक में विशेषकर कमलेश चंद्र जोशी का लेख 'बच्चे सीखते हैं, समझते हैं' तथा जॉन होल्ट का 'ये छोटे-छोटे पुस्तकालय' अच्छे लगे। वास्तव में आज लोगों में पढ़ने एवं लिखने की आदत खत्म होती जा रही है जिसे बढ़ाने के लिए पुस्तकालयों की आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। मेरा एक सुझाव है कि यदि इस लेख को पूर्णतः अनुवादित न करते हुए क्षेत्रीय परिस्थितियों को देखते हुए तैयार करके आप प्रकाशित करते तो यह आलेख काफी महत्वपूर्ण होता।

शिवनारायण गौर
पो. रोहना, ज़िला होशंगाबाद

तीन वर्ष से मैं संदर्भ का नियमित सदस्य हूं। जब संदर्भ मिलने में देरी होती है तो मन उदास हो जाता है। मानों अपनी कोई प्यारी

चीज़ खो गई हो। यह मेरे लिए अति उपयोगी पुस्तिका है। मैं संदर्भ के लेख एवं 'सवालीराम का सवाल' अपनी स्कूल की छात्राओं से भी कराता हूं। सवाल सुनकर ज़रूर सब सिर खुजलाने लगते हैं।

अंक 21 हाल ही में मिला है। क्या अंक इतनी देरी से प्रकाशित होता है? या फिर मुझे देरी से भेजते हैं। आप सोचिए कि अभी जुलाई माह चल रहा है और अभी हमें जनवरी-फरवरी का अंक मिला है!!

क्या सचमुच ही अंक इतनी देरी से निकलते हैं? क्या मुश्किल और परेशानी है कि आप इतनी देर से अंक प्रकाशन करते हैं? मैं आपके प्रकाशन मासिक 'स्रोत' का भी नियमित सदस्य हूं। वह तो समयानुसार प्रकट होता है, मिलता है; तो यह संदर्भ के प्रकाशन में ही इतनी देर क्यों लगती है?

क्या आपके लिए पाठक के अलावा किसी और का महत्व होता है? आपके लिए तो संदर्भ के पाठक के अलावा और कोई महत्वपूर्ण बात हो ही नहीं सकती। तो अगर देरी से प्रकाशित होता है तो इसे नियमित बनाएं। हम तो सोचते हैं कि ऐसी पत्रिका मासिक होनी चाहिए पर आप तो द्वैमासिक में भी नहीं पहुंच पाते।

संदर्भ हमारे लिए सामान्य ज्ञान, विज्ञान और शिक्षण – इन सब बातों का बड़ा ही महत्वपूर्ण द्वैमासिक है।

सागर पाठक
भावनगर, गुजरात

आपकी शिकायत जायज़ है। सिर्फ आपको ही नहीं सभी पाठकों को संदर्भ देरी से मिलता है। वजह है प्रकाशन में देरी। इस संबंध में हमने अपने पाठकों को एक खत भी लिखा था, कुछेक महीने पहले।

यकीन मानिए कि पाठक के अलावा हमारे लिए कोई और महत्वपूर्ण चीज़ नहीं है। अगर पढ़ने वाले न हों तो किसी सामग्री को प्रकाशित करने का औचित्य ही क्या? और अगर हैं तो उनका ख्याल करना संपादकीय टीम का फर्ज़ है। पूरी कोशिश में है हमारी टीम कि इस साल के अंत तक आपको समय से अंक मिलने लगें। तब तक के लिए हमारा साथ दीजिए।

— संपादक मंडल

संदर्भ मुझे अतिप्रिय है किन्तु इसकी देरी खलती है। किसी-किसी लेख की भाषा कठिन प्रतीत होती है। अतः उन्हें दो या तीन बार पढ़ना पड़ता है। संदर्भ के लेखों द्वारा हमें अध्ययन में भी सहायता मिलती है और नई जानकारियां प्राप्त होती हैं।

नरेश रणसूरमा
गणेश चौक, हरदा

21वें अंक में गंगा गुप्ता का लेख 'मैं शिक्षिका क्यों बनी' मज़ेदार लगा। दूर-दराज़ के इलाकों में शिक्षा के प्रकाश को सतत बढ़ाए जाने का कार्य ही अपने आप में चुनौतीपूर्ण होता है। हाल ही में हिमाचल के डलहौज़ी से 22 कि. मी. दूर खाज़ियार कस्बे में मैं कुछ दिन रहा। इस दौरान मैं वहां के गांवों में भी गया। मैंने पाया कि वहां काफी गांव तो ऐसे हैं जहां प्रत्येक गांव में केवल तीन-चार परिवार ही रहते हैं। इन गांवों के बच्चों को पढ़ने के लिए खाज़ियार स्थित राजकीय विद्यालय आना पड़ता है। अभिप्राय यह है कि मुख्यधारा से कटे ऐसे गांवो के लोगों को शिक्षा कम-से-कम एक सूत्र में पिरोती है, एक जगह इकट्ठा करती है। ऐसे क्षेत्रों में चहां चिट्ठी पत्री भी देर-सवेर पहुंचती है अगर वहां शिक्षा भी न पहुंचे तो कितनी सीमित हो जाए उनकी दुनिया।

मुनीश रायज़ादा
फरीदाबाद, हरियाणा

20वां अंक पढ़ा। अंक जितना देरी से आया उतनी ही रोचकता भी लाया। अंक पढ़ने के बाद जो देरी की शिकायत करने की मैंने ठानी थी वह तमन्ना ढह गई क्योंकि संदर्भ की सामग्री को देखकर अहसास हुआ कि इसे जुटाने में समय तो लगा ही होगा। खैर!

मिलिंद वाटवे की 'बर्ड वॉचिंग' अच्छी लगी। इसी तरह अजय शर्मा ने अतिचालकता को काफी अच्छी तरह प्रस्तुत किया। 'परागकण का सफर' काफी रोचक लगा, इस लेख के साथ दिए गए चित्र काफी सजीव थे। लेकिन जब आगे बढ़ा तो विज्ञान गल्प पिछली बार की तरह नदारद थी। वैज्ञानिकों की जीवनियां और उनके शोधकार्यों के बारे में जानकारी ज़रूर दें।

चम्पालाल कुशवाहा
हिरन खेडा, होशंगाबाद

संदर्भ मुझे बराबर मिल रहा है। इससे परिवार और आसपास के बच्चे लाभांवित हैं। पत्रिका अपेक्षा से अधिक उच्चस्तरीय और संपादन की दृष्टि से समृद्ध है।

रामनारायण स्वामी
सादतपुर विस्तार, दिल्ली

कैसे भेज रहे हैं पैसा आप?

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर, ड्राफ्ट, चैक आदि से भेज सकते हैं। लेकिन –

1. अगर ड्राफ्ट – स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंदौर, केनरा बैंक से बनवा रहें हों तो एकलव्य के नाम से **होशंगाबाद पर देय** बनवाएं। इनपर कोई अतिरिक्त सर्विस चार्ज नहीं लगता क्योंकि इनकी शाखाएं होशंगाबाद में हैं।

   अगर किसी भी अन्य बैंक – जैसे इलाहाबाद, यूनियन बैंक आदि से बनवा रहें हों तो एकलव्य के नाम से, लेकिन **भोपाल पर देय बनवाएं।** क्योंकि होशंगाबाद में इनकी शाखा नहीं है इसलिए सर्विस चार्ज के रूप मे 25 रुपए कट जाते हैं। अगर किसी ने 35 रुपए का ड्राफ्ट भेजा है तो उसमें से हम तक सिर्फ 10 रुपए ही पहुंच पाते हैं।

2. अब सदस्यता शुल्क **चैक से भी भेजा जा सकता है**। सदस्यता शुल्क के साथ **27 रुपए बैंक सर्विस चार्ज** के अतिरिक्त जोड़ें। बैंक कलेक्शन व पोस्टेज चार्ज के लिए इतने रुपए हर चैक से काट लेती है।

3. वैसे **सबसे बेहतर तरीका मनीऑर्डर है**। इसमें न तो बैंक में समय खपाने की ज़रूरत है और न ही सर्विस चार्ज की दिक्कत। परन्तु मनीऑर्डर के संदेश वाले हिस्से में अपना स्पष्ट पता जरूर लिखें।

4. आखिर में, विशेष ध्यान रखें कि ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बना हो, संदर्भ के नाम पर नहीं।

   सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें।

संदर्भ	**संदर्भ**
द्वारा एकलव्य	**द्वारा एकलव्य**
कोठी बाज़ार	**ई-1/25, अरेरा कॉलोनी**
होशंगाबाद 461 001	**भोपाल 462 016**

संदर्भ सजिल्द

शैक्षिक संदर्भ

अंक 13 से 18

एकलव्य का प्रकाशन

संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के अंक '13 से 18' का सजिल्द संस्करण। इन अंकों में प्रकाशित लेखों का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है। अंक सीमित मात्रा में उपलब्ध।

मूल्य: 60 रुपए (डाकखर्च सहित)।

अंक '1 से 6' और '7 से 12' के सजिल्द संस्करण भी उपलब्ध। इनकी कीमत भी 60 रुपए है।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

सिकाडा का मधुर संगीत

नीरज जैन

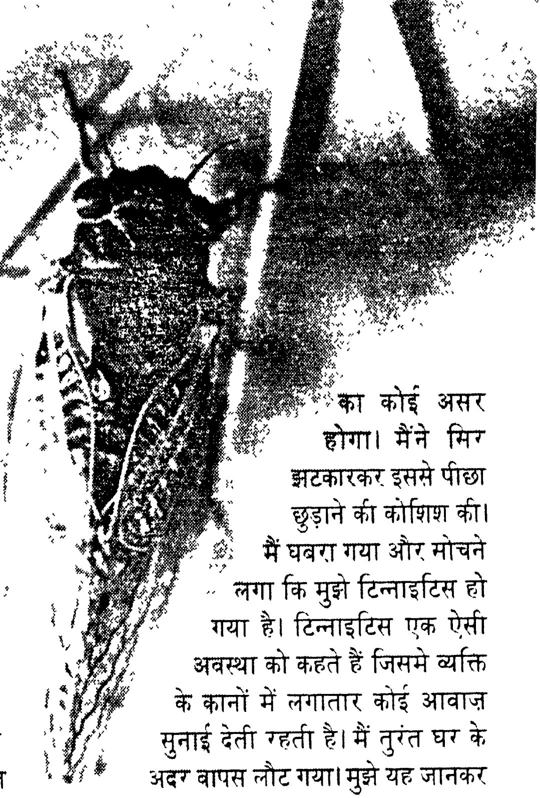

20 मई की सुबह मैं ब्राज़ील से लौटा। नहा-धोकर एक झपकी ली, और काम पर जाने को तैयार हो गया। सीढ़ियों से नीचे उतरते ही, मैंने अपने कानों में एक तेज़ भिनभिनाहट महसूस की। पहले सोचा कि दस दिनों की गैरहाज़िरी के दौरान पड़ोस के घर की चिमनी से आने वाली हवा की आवाज़ और बढ़ गई होगी। लेकिन यह आवाज तो हर तरफ उतनी ही तेज थी और चारों दिशाओं से आ रही थी, मानों कि वह मेरे सिर के अन्दर ही हो। फिर मैंने सोचा कि शायद यह मेरे लंबे, थका देने वाले, रात भर के हवाई सफर और कम नींद ले पाने का कोई असर होगा। मैंने सिर झटकारकर इससे पीछा छुड़ाने की कोशिश की। मैं घबरा गया और सोचने लगा कि मुझे टिन्नाइटिस हो गया है। टिन्नाइटिस एक ऐसी अवस्था को कहते हैं जिसमे व्यक्ति के कानों में लगातार कोई आवाज़ सुनाई देती रहती है। मैं तुरंत घर के अदर वापस लौट गया। मुझे यह जानकर काफी राहत मिली कि वह आवाज़ अब नहीं आ रही थी। लेकिन जब मैंने खिड़की खोली तो वह आवाज़ फिर से आ गई, खिड़की बन्द कर दी तो आवाज़ गायब। मुझे यह जानकर बेहद तसल्ली मिली कि भिनभिनाहट का स्रोत मेरे अन्दर नहीं बल्कि बाहर था। इस बात से आश्वस्त,

लेकिन फिर भी पूरी बात को समझ न पाने के कारण कुछ उलझा हुआ, मैं बाहर निकलकर अपनी प्रयोगशाला की तरफ चल पड़ा। तभी मुझे बड़ी-बड़ी उभरी हुई लाल आंखों और भूरे से पारदर्शी पंखों वाले वो बड़े काले कीड़े दिखाई दिए जो भिनभिनाते हुए पेड़ों के इर्द-गिर्द उड़ रहे थे। इस तरह के कीड़े मैंने पहले कभी भी अपने घर के आसपास नहीं देखे थे। फिर मुझे यही कीड़े और दिखाई दिए. . .और कीड़े. . .और. . .। वो लाखों की तादाद में हर कहीं थे – प्रयोगशाला के रास्ते में हर तरफ, बिल्कुल किसी डरावनी कहानी की तरह।

जैसे ही मैं प्रयोगशाला में पहुंचा मेरी दोस्त लॉरा ने मुझसे पूछा, "तो, सिकाडा के बारे में तुम्हारा क्या ख़्याल है?" और तभी मुझे याद आया कि मैंने लोगों को कहते सुना था कि 1998 सिकाडा का वर्ष है। यानी वह साल जब सिकाडा अपने 13 साल के जीवनचक्र में बहुत बड़ी संख्या में दिखाई देंगे। बाद में मेरे दोस्त केन ने मुझे इन कीड़ों को पकडने का तरीका बताया। केन सब तरह के कीड़े-मकोड़े को बहुत चाहता है और उनके बारे में बहुत कुछ जानता है। सिकाडा पकडना काफी आसान था क्योंकि एक तो वे इतनी अधिक संख्या में चारों तरफ मौजूद थे, और फिर पास जाने पर भी उड़ते नहीं थे। बस एक सिकाडा पकड़कर उसने मुझे इस बात से निश्चित कर दिया कि सिकाडा किसी भी तरह का नुकसान नहीं करते थे – न तो काटते थे, न ही डंक मारते थे। केन ने मुझे सिकाडाओं में नर और मादा की पहचान करना सिखाया, और उनके बारे में कई और रोचक बातें भी बताईं।

13 साल में एक बार

सिकाडा कीटो के होमोप्टेरा गण (Order) के सदस्य है। इसका मतलब यह हुआ कि ये एफिड (Aphid) और लाख के कीडे से काफी मिलते-जुलते हैं। इनका जीवन चक्र बेहद लंबा और बहुत ही मज़ेदार होता है। मादा सिकाडा पेडों पर अंडे देती है। अंडे फूटने के बाद, लार्वा (First Instar Nymph) उन पेडो से टपककर नीचे ज़मीन मे घुस जाते हैं।

ज़मीन के अन्दर पहुंचने के बाद ये बाल-कीट छोटी जड़ों का रस चूसकर अपना पेट भरते हैं। विकास के दौरान

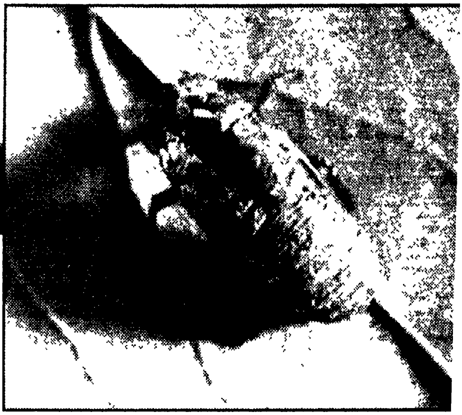

अंतिम कायांतरण के पश्चात बचा खाली खोल। वयस्क इससे निकल चुका है। एक फोटो बाजू से और दूसरा ऊपर से लिया गया है।

ये बचपन के पांच चरणों से गुज़रते हैं। इस दौरान वयस्क बनने की प्रक्रिया में न केवल इनका आकार चींटी से बढ़कर तीन-चार से. मी. तक पहुंच जाता है – साथ ही ये कायांतरण (Metamorphosis) के कई चरणों से भी गुज़रते हैं। इस प्रक्रिया को 12 साल लग जाते हैं। और फिर तेरहवें साल में जादू होता है। तेरहवें साल की बसन्त ऋतु में, बाहर निकलने से कुछ हफ्ते पहले ये बाल कीट ज़मीन से बाहर आने के लिए सुरंगें बनाते हैं। ज़मीन की सतह तक निकलने वाली ये सुरंगें लगभग एक से. मी. व्यास की होती हैं। कभी-कभी इन सुरंगों से एक चिमनीनुमा सिरा भी बाहर की ओर निकला दिखता है। बाहर आने वाली रात में, सभी बाल-कीट सूरज डूबने के कुछ ही देर बाद अपनी सुरंगों के रास्ते बाहर निकल आते हैं। बाहर आकर ये पेड़ों पर चढ़ जाते हैं और अपने अंतिम कायांतरण से गुज़रते हुए, और लगभग तीन-चार से. मी. लंबे वयस्क कीट के रूप में प्रकट होते हैं।

निकलने की शाम आई?

भारत के पांचवें हिस्से जितने बड़े इलाके में फैले इन बाल कीटों को आखिर कैसे मालूम पड़ता है कि बाहर

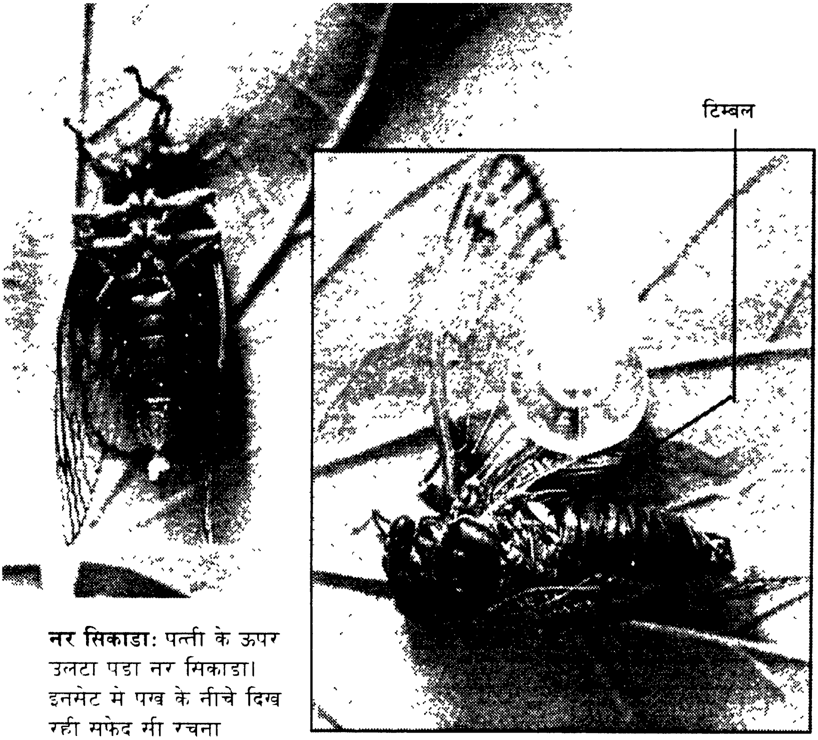

नर सिकाडा: पत्ती के ऊपर उलटा पडा नर सिकाडा। इनसेट में पंख के नीचे दिख रही सफेद सी रचना टिम्बल है। इसी टिम्बल से पैदा करते हैं ये अपनी आवाज।

निकलने वाली शाम आन पहुंची है? कोई नहीं जानता यह। वैज्ञानिक बेताब हैं इस बारे में जानने को और जुटे हुए हैं इस पहेली को सुलझाने में। बाहर निकलने के बाद अभी तीन-चार दिन और लगते हैं सिकाडा के बाहरी कवच जैसै आवरण को कड़ा और गहरे रंग का होने में। और इसके बाद शुरू होता है समूहगान, जिसने मुझे यह सोचने पर मजबूर कर दिया था कि मुझे कहीं टिन्नाइटिस तो नहीं है? वयस्क सिर्फ कुछ ही हफ्ते जीवित

रहते हैं — अपने 13 साल लम्बे जीवन के मुकाबले एक बहुत छोटा सा भाग।

सिर्फ नर सिकाडा ही यह ध्वनि पैदा कर सकते हैं। आवाज़ उत्पन्न करने के लिए उनके पंखों के नीचे (पेट के पहले खण्ड में) खास सफेद धारीदार अंग होते हैं। इन अंगों को टिम्बल (Timble) कहते हैं। इनका पेट खोखला होता है — जो शायद सितार की तरह आवाज़ में गूंज पैदा करने के काम आता हो। नर सिकाडा बड़े-बडे झुण्डों मे रहते हैं और किसी पेड़ पर बैठे सारे नर एक-साथ आवाज़ निकालते है। यह समूहगान मादा सिकाडाओ को आकर्षित करने के लिए होता है। किसी पेड के नीचे खड़ा होकर कोई भी इस गान के ऊपर चढ़ने और नीचे गिरने का मज़ा ले सकता है। और अगर आप पेड़ों की किसी कतार के पास खडे हैं तो फिर बात ही क्या है। ऐसा लगता है कि आवाज़ पहले पेड़ से शुरू होकर अगले, फिर अगले से होते हुए पूरी कतार का सफर करती है, बिल्कुल एक तरंग की तरह। अगर नर सिकाडाओं को पकड़ा जाए तो वे चिचियाने जैसी एक और ध्वनि पैदा करते हैं — यह ध्वनि दूसरों को खतरे से सतर्क करने के लिए होती है।

संसर्ग के बाद मादा सिकाडा पेड़ की छोटी शाखाओं पर बने छोटे-छोटे घोंसलों में अंडे देती है — एक घोंसले में अंडों की संख्या लगभग बीस होती है। एक मादा 600 के करीब अंडे

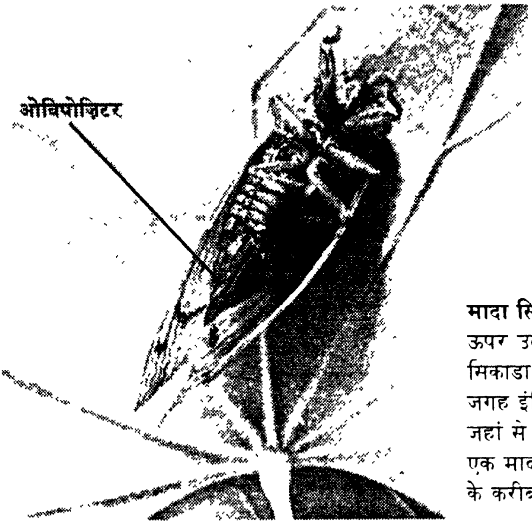

मादा सिकाडा: पत्ती के ऊपर उल्टी पडी मादा सिकाडा। फोटो मे वो जगह इंगित की गई है जहां से वो अंडे देती है। एक मादा लगभग 600 के करीब अंडे देती है।

देती है। करीब छह हफ्ते बाद अंडे फूट जाते हैं, लार्वा शिशुकीट नीचे गिरकर ज़मीन में घुस जाते हैं और अपने तेरह साल के जीवनचक्र की शुरुआत करते हैं।

केन ने मुझे दिखाया कि कैसे सिकाडा को पलटकर देखा जा सकता है कि वो नर है या मादा। मादा सिकाडाओं का पेट नीचे की ओर नुकीला होता है और उसमें अण्डे देने के लिए एक खास अंग (Ovipositor) भी होता है। सिकाडाओं ने मुझे कोडाइकनाल में पाए जाने वाले कुरूंजी पौधों की याद दिलाई। कुरूंजी के सभी पौधों में बारह सालों में एक बार, एक ही साथ फूल खिलते हैं। इसी तरह एक इलाके के बांस के पेड़ों में भी फूल कई सालों में एक बार, एक साथ ही खिलते हैं। कभी-कभी तो ये फूल 40 साल बाद आते हैं।

सिकाडाओं की कई प्रजातियां होती हैं जिनका जीवनकाल चार से लेकर सत्रह साल तक का हो सकता है। कुछ प्रजातियों में वयस्क सिकाडा हर साल प्रकट होते हैं। इनमें हरेक सिकाडा का जीवनचक्र आपस में समन्वित नहीं होता। अन्य प्रजातियों में जीवनचक्र समन्वित हात हैं और वयस्क सिकाडा तेरह साल में एक बार या कुछ प्रजातियों में सत्रह साल में प्रकट होते हैं। लेकिन उन वैज्ञानिकों का सोचो जो यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं कि सब सिकाडाओं को यह कैसे पता चलता है कि अब बाहर निकलने का वक्त आ गया? क्या उन वैज्ञानिकों को तेरह या सत्रह साल तक इन्तज़ार करते रहना पड़ता है? किस्मत से ऐसा नहीं है। अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले सिकाडाओं के अलग-अलग झुण्ड अपना जीवनचक्र अलग-अलग सालों में पूरा करते हैं। (यहां झुण्ड से मतलब सिकाडाओं के ऐसे समूह से है जिसके सारे सदस्य एक ही साल में पैदा हुए हों।) इन झुण्डों की तुलना हम कुम्भ के मेले से कर सकते हैं। यह मेला भी किसी एक जगह पर बारह साल बाद ही लगता है। पर ऐसी चार जगहें हैं जहां ये मेले भरते हैं। इसलिए आप चाहें तो तीन साल बाद भी कुम्भ के मेले में जा सकते हैं। इसी तरह तेरह साल का जीवन चक्र वाले सिकाडाओं के तीन झुण्ड हैं – इनमें से एक 1998 यानी इसी साल प्रकट हो चुका है, दुसरा झुण्ड 2001 में और तीसरा झुंड 2007 में प्रकट होगा। इसी तरह सत्रह साल का जीवनचक्र वाले सिकाडाओं के भी बारह झुण्ड हैं।

सिकडाओं का जीवनचक्र इतना अजीब क्यों होता है? जैविक विकास के क्रम में पेड़-पौधों और जानवरों की विभिन्न प्रजातियों में प्रजाति के जीवित रह पाने, बचे रहने को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न रणनीतियां पाई जाती हैं। जीव-

पेड़ पर ऊपर जाते और नीचे उतरते सिकाडा।

दूसरे शिकारी जीव जी भरकर भी इन्हें खाएं, तो भी प्रजाति को आगे बढ़ाने के लिए अंडे देने के समय तक कुछ तो जीवित बच ही जाएंगे। मैंने गिलहरियों, चिड़ियाओं और कुत्तों को सिकाडा भकोसते देखा है। वे एक बार में इतनी तादाद में इन्हें खा जाते हैं कि फिर उलटी करने लगते हैं। मैं कल्पना कर रहा था कि इन दिनों जब चिड़ियों के घोंसलों में मां या पिता खाना लेकर आते होंगे तब बच्चे गर्दन लम्बी करके पता लगाने की कोशिश करते होंगे कि खाने में क्या है? और फिर शायद वे नाक-भौं सिकोड़कर घोंसले में दुबक जाते होंगे, 'अरे नहीं, सिकाडा . . . अब नहीं!'

वैज्ञानिक यह मानते हैं कि चूंकि ये सिकाडा इतने असहाय हैं, और इतने स्वादिष्ट भी कि सभी शिकारी जानवर उन्हें खाना बहुत पसन्द करते हैं। इसलिए जब ये अचानक बहुत बड़ी संख्या मे एक साथ प्रकट होते हैं – तब अगर सभी पक्षी, गिलहरी और

नीरज जैन अमेरिका मे पढ़ाते और शोध करते हैं। *सभी फोटोग्राफ: नीरज जैन।*

मूल लेख अंग्रेजी में, अनुवाद : **टुलटुल विश्वास**, टुलटुल विश्वास एकलव्य द्वारा प्रकाशित बाल विज्ञान पत्रिका चकमक मे सबद्ध है।

आवेश, चुंबक और कूलंब का बल

एस. बी. वेलणकर

विशाल प्रकृति को समझने में गुरुत्वाकर्षण बल काफी मदद करता है। वहीं सूक्ष्म स्तर पर जब आप परमाणु और उसके भीतर जाते हैं तो ऐसे बल मिलते हैं जिनके सामने ये बहुत शक्तिशाली लगने वाला बल गौण लगने लगता है।

पिछले अंक में बल और ऊर्जा की चर्चा के दौरान हमने देखा कि जब भी ऊर्जा व्यय हुई और हमारे पास कोई तरीका नहीं है जो व्यय हुई ऊर्जा को पुनः प्राप्त कर सके तो वह बल घर्षण प्रकृति का बल है। जैसे हीटर में तार का प्रतिरोध – उसमें जब विद्युत ऊर्जा का व्यय होता है तो ऊष्मा निकलती है; श्यानता बल – जिसमें द्रव की विभिन्न सतहों के बीच घर्षण होता है और ऊष्मा पैदा होती है। इस तरह पैदा ऊष्मा इतनी जल्दी वातावरण में विसरित हो जाती है कि उसे पुनः प्राप्त करना असंभव होता है। यह सारे बल घर्षण प्रकृति के बल हैं; असंरक्षी बल हैं। अर्थात वे सभी बल जिनके विरुद्ध व्यय ऊर्जा से ऊष्मा प्राप्त होती है, उन्हें घर्षण प्रकृति के बल कहा जाता है।

हमने यह भी देखा था कि गुरुत्वाकर्षण बल इन सब से अलग प्रकृति का बल है जिसमें ऊर्जा को

* इस लेख का पहला भाग *'कहां बल और क्या ऊर्जा'* संदर्भ के पिछले अंक (जनवरी-फरवरी १९९८) में प्रकाशित हो चुका है।

पुन: प्राप्त किया जा सकता है। यह एक संरक्षी बल है।

लेकिन गुरुत्वाकर्षण बल प्रकृति का सबसे अशक्त बल है। अगर यह सही है तो स्वाभाविक रूप से सवाल उठता है कि तब इस बल के ज़रिए एक आकाशीय विशाल पिंड फिर कैसे दूसरे को अपनी ओर खींच पाता है? कैसे सूर्य पृथ्वी को, और पृथ्वी चंद्रमा को बांधे हुए है? दरअसल ये पिंड इतने जा सकता। प्रकृति के बारे में एक वृहद पैमाने पर हम जो कुछ समझ पाए हैं वह इसी बल की देन है – पृथ्वी के इर्द-गिर्द चंद्रमा की गति, सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति, आकाशगंगा के अंदर सूर्य की गति, ब्रह्मांड के दूर-दराज़ के छोरों पर विभिन्न पिंडों की गतियां; इतना ही नहीं आकाशीय पिंडों के भार और दूरियों की गणनाएं भी इसी बल की समझ के कारण संभव

बड़े हैं, इतने विशाल हैं कि उनके बीच एक कमज़ोर खिंचाव का बल होते हुए भी एक दूसरे को इतना प्रभावित कर पाते हैं। लेकिन वहीं इसकी तुलना अगर दूसरे बलों से की जाए तो समझ मे आएगा कि यह कितना कमज़ोर है।

परन्तु एक बात का ख्याल रखिएगा कि कमज़ोर बल समझकर गुरुत्वाकर्षण बल को नज़रअंदाज़ कतई नहीं किया हो पाई हैं। यही नहीं बृहस्पति पर शूमेकर-लेवी धूमकेतू कब और कहां पर गिरने वाला है इसकी गणनाएं भी गुरुत्वाकर्षण बल की समझ के कारण ही धरती पर बैठे-बैठे हो पाई थीं।

आवेश के बीच का मामला

आइए, अब एक ताकतवर बल की बात करते हैं। यह तो आपको मालूम होगा ही कि दो आवेशों के बीच

आकर्षण या विकर्षण होता है, जैसे कि दो इलेक्ट्रॉन आपस में एक दूसरे को विकर्षित करते हैं। ऐसा क्यों है?

जब दो इलेक्ट्रॉन की बात करते हैं तो स्वाभाविक है कि उनके द्रव्यमान के कारण, वे गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से एक दूसरे को आकर्षित करेंगे। लेकिन इस आकर्षण का मान उनके बीच लगने वाले एक दूसरे बल की तुलना में इतना नगण्य होता है कि उसे एकदम नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। इस दूसरे बल की प्रकृति ऐसी है कि समान आवेश के बीच विकर्षण होता है, और असमान आवेश के बीच आकर्षण। इसीलिए दो इलेक्ट्रान एक-दूसरे को विकर्षित करते हैं।

यह दूसरा बल है कूलम्ब का बल – जो दो आवेशों के गुणनफल के समानुपात और दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात में होता है।*

आइए अब आकाशीय पिंडों की गतियों से तुलना करके कूलम्ब के बल को समझने का प्रयास करें। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, या चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है – इन गतियों को हम किस तरह समझते हैं?

जब वस्तु वृत्ताकार पथ में घूमती है तो उस पर बाहर की ओर एक बल लगता है – अपकेन्द्र बल, जिसके कारण वस्तु घूमते-घूमते बाहर निकल जाती। धागे से पत्थर बांधकर घुमाने का अनुभव सबको होगा, अगर धागे को छोड़ दें तो वो पत्थर समेत दूर फिका जाता है। मगर यहां तो पृथ्वी लगातार घूमे जा रही है। ऐसा क्यों है? क्योंकि इस अपकेन्द्र बल को गुरुत्वाकर्षण बल संतुलित करके रखता है, जिससे वह अपने पथ पर, अपने कक्ष में घूमती रहती है।

सूक्ष्म धरातल पर भी कुछ ऐसा ही होता है। चलिए ज़रा गहराई में चलते हैं। परमाणु में एक धन नाभि है, जो प्रोटॉन (धन आवेशित) और न्यूट्रॉन (उदासीन कण) से बनी हुई है; और इलेक्ट्रॉन (ऋण आवेशित) उसके चारों ओर घूम रहा है। घूमते-घूमते अपकेन्द्री बल की वजह से इलेक्ट्रॉन बाहर की ओर भागता है लेकिन कूलम्ब का आकर्षण बल उसे संतुलित करके रखता है, पकड़ के रखता है।

अगर इलेक्ट्रॉन को उसके कक्ष से ऊपर ले जाना चाहें, नाभिक से दूर तो क्या वह अपने आप ऊपर जा सकता है? अगर वो दूर जाएगा तो

* कूलम्ब का बल $\propto \frac{Q_1 \times Q_2}{r^2}$

जहां Q_1 और Q_2 आवेश की मात्रा है और r दोनों के बीच की दूरी है।

उसकी स्थितिज ऊर्जा बढ़ेगी और यह अपने आप तो बढ़ नहीं सकती, यानी उसे ऊपर ले जाने के लिए हमें ऊर्जा देनी पड़ेगी। इसके विपरीत जब वो अंदर नाभिक की ओर गिरेगा या जाएगा तो उसकी स्थितिज ऊर्जा कम होगी; ऐसी स्थिति में कहां जाएगी यह ऊर्जा? ऐसे समय उसमें से विकिरण निकलते हैं – प्रकाश निकलता है, एक्स किरणें निकलती हैं, ऊष्मा निकलती है, तमाम अलग-अलग तरह के विकिरण के रूप में ऊर्जा निकलती है। इसे रेडिएशन भी कहते हैं। यानी परमाणु में से प्रकाश निकलने की घटना को हमने कूलंब के बल से समझा।

चहुं ओर अगर आवेश ही आवेश है तो फिर आवेश स्वतंत्र रूप से क्यों नहीं दिखते हमें? क्योंकि कभी भी परमाणु की एक इकाई लो हमेशा दोनों – धन और ऋण आवेश – मौजूद होते हैं। इसलिए बाहर से देखो तो उनमें कोई विद्युत आवेश नहीं दिखता।

विभव और विद्युत ऊर्जा

चलिए एक स्थिति के बारे में सोचते हैं। मैं छड़ के सिरे से एक ऋण आवेश को ले जा रहा हूं। ऐसा करने के लिए मुझे क्या करना होगा?

जैसे ही मैंने ऋण आवेश को किनारे से सरकाया, तो सिरे पर बचेगा धन आवेश जो इस ऋण आवेश को आकर्षित करेगा। मतलब जब तक कि मैं बल लगाकर ऊर्जा न डालूं तब तक मेरे लिए ऋण आवेश को उठाकर ले जाना संभव नहीं है। बल लगाकर मैं इसे खींचकर ले जा सकता हूं। यह जो ऊर्जा मैंने व्यय की वह अब इस आवेश में आ जाएगी और स्थितिज ऊर्जा के रूप में संग्रहित हो जाएगी। तो आवेश में उसकी स्थिति विशेष के कारण जो ऊर्जा है उसी स्थितिज ऊर्जा को हम 'विभव' से नापते हैं। और इसे नाम देते हैं विद्युत ऊर्जा।

अगर हम आवेश की स्थितिज ऊर्जा

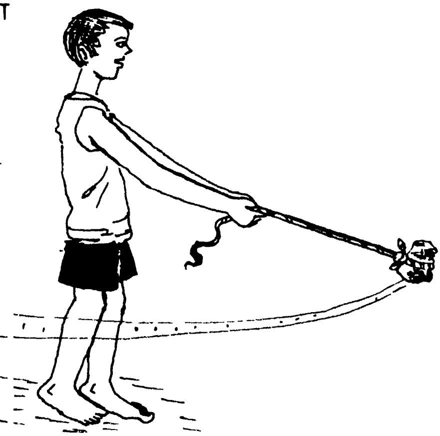

रेखाचित्र शिवेन्द्र पंड्या

बढ़ाना चाहते हैं तो हमें विभवांतर बढ़ाना पड़ेगा। यानी बाहर से ऊर्जा देनी पड़ेगी। कहां से देंगे यह ऊर्जा इस आवेश को?

झरने में जो पानी ऊपर से गिरता है उसकी स्थितिज ऊर्जा को हम विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं, या फिर थरमल पॉवर स्टेशन में कोयला जलता है उसकी रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल दें, या फिर सेल के अंदर रासायनिक क्रियाओं की मदद से रासायनिक ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में बदल दें; या फिर डायनमो को घुमाकर ऊर्जा पैदा कर सकते हैं। कुल मिलाकर कहें तो ऋण आवेश को धन आवेश के विरुद्ध खींचकर ले जाने से विद्युत ऊर्जा मिलती है।

अब विपरीत स्थिति की कल्पना करते हैं। किसी तरह से हमने ऐसी स्थिति बना दी है कि छड़ के एक छोर पर ऋण आवेश है और दूसरे पर धन। अब यदि ऋण सिरे को धन सिरे से तार से जोड़ दें तो ऋण आवेश धन की ओर गिरेगा, धन सिरे की ओर लौटेगा; तब उसकी विद्युत ऊर्जा (स्थितिज ऊर्जा) का क्या होगा?

इसका जवाब देने के लिए आपको उसी शुरुआती नियम का ध्यान रखना होगा – ऊर्जा न तो नष्ट हो सकती है, न उत्पन्न हो सकती है, केवल उसका रूप परिवर्तन होता है। डायनमो को घुमाने में आपको बहुत ताकत लगेगी, क्योंकि वास्तव में आप कर ये रहे हैं कि ऋण आवेश को धन आवेश से खींचकर दूर ले जा रहे हैं। आप अपनी ताकत से आवेश की स्थितिज ऊर्जा यानी 'विद्युत विभव' बढ़ा रहे हैं। गेंद को गुरुत्वाकर्षण बल के खिलाफ नीचे से उठाकर उपर ले जाने में भी यही हुआ था – गेंद की स्थितिज ऊर्जा बढ़ गई थी। और उपर ले जाकर जब हमने उसे छोड़ दिया तो गेंद ने गति पकड़ ली थी।

छड़ के ऋण और धन सिरों को आपस में जोड़ देने से भी यही होगा – इलेक्ट्रॉन गति पकड़ लेगा।

परन्तु बात यहीं खत्म नहीं होती इसलिए हमें फिर से गुरुत्वाकर्षण बल वाले उदाहरण का सहारा लेना पड़ेगा। गिरती हुई गेंद पर लगातार बल लग रहा है इसलिए उसकी गति लगातार बढ़ती जानी चाहिए परन्तु दरअसल ऐसा नहीं होता। बल्कि ऐसा होता है – कि कुछ समय बाद गेंद स्थिर

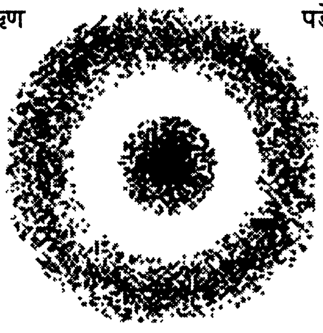

गति से चलने लगती है, फिर उसका वेग नहीं बढ़ता। वायुमंडल के घर्षण की वजह से ऐसा होता है। अगर वायुमंडल न हो तो गेंद की गति बढ़ती ही जाएगी, जब तक वह ज़मीन से न टकरा जाए। गिरते हुए जिस समय गेंद की गति स्थिर हो गई, उसकी गतिज ऊर्जा भी स्थिर हो गई। परन्तु गेंद नीचे की ओर आ रही है इसलिए उसकी स्थितिज ऊर्जा तो लगातार कम हो रही है, तो फिर ये ऊर्जा गई कहां? स्पष्ट है कि घर्षण बल के विपरीत कार्य हुआ और ऊर्जा उष्मा में परिवर्तित हो गई।

हमारे विद्युत बल वाले उदाहरण में भी ठीक यही होता है। तार के ज़रिए धन छोर की तरफ जा रहे इलेक्ट्रॉन की गति भी स्थिर हो जाती है। अब सवाल उठता है कि ऐसा कोई माध्यम नहीं होता क्या जिसमें घर्षण बल बिल्कुल ही न हो। अगर ऐसा हो पाए तो इलेक्ट्रॉन का वेग बढ़ता ही चला जाएगा। सुपर-कंडक्टर यानी अतिचालक* में होता है ऐसा। इसमें अगर धारा प्रवाहित कर दो और विद्युत विभवान्तर बंद कर दो तो भी इलेक्ट्रॉन गति करते रहते हैं; क्योंकि उनकी गतिज ऊर्जा नष्ट नहीं हो सकती।

लेकिन कोई भी तार अतिचालक नहीं होता इसलिए घर्षण बल का असर पड़ेगा। पहले तो इलेक्ट्रॉन का वेग बढ़ेगा, धारा बढ़ेगी। मगर बाद में धारा स्थिर हो जाएगी। धारा यानी आवेश की गति की ऊर्जा।** वेग अधिक रहेगा तो धारा अधिक रहेगी, धारा स्थिर है तो गति की ऊर्जा स्थिर हो रही है। परन्तु स्थिति की ऊर्जा यानी विद्युत विभव का क्या होगा, वह कहां जाएगी? यदि बीच में हीटर

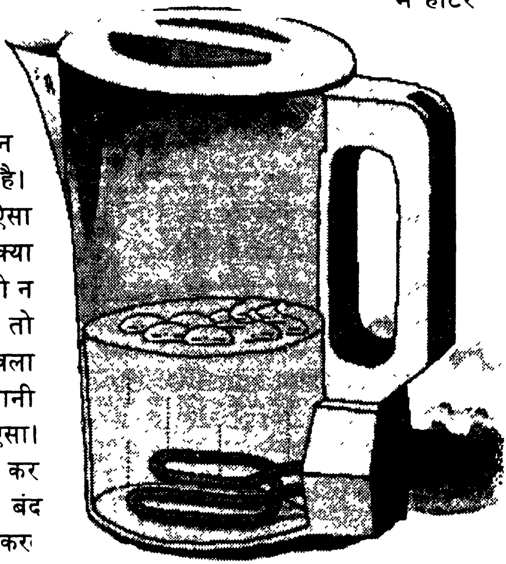

* देखिए संदर्भ के 20वे अक में प्रकाशित लेख 'अतिचालकता'।

** प्रति एकांक समय में किसी अनुप्रस्थ काट से जितना आवेश प्रवाहित होता है वह धारा की माप है।

लगा दिया जाए तो ऊष्मा में, यदि बल्ब लगा दिया जाए तो प्रकाश में, रेडियो लगा दिया जाए तो ध्वनि की ऊर्जा में, पंखा लगा दो तो यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है वह। . . . किसी भी काम में लगा सकते हैं, बशर्ते कि तार का प्रतिरोध कम हो अन्यथा अधिकतर विद्युत ऊर्जा, ऊष्मा में परिवर्तित हो जाएगी, जिसे हम अपने काम में वापस नहीं ला सकते।

एक और सवाल उठता है कि जब धारा प्रवाहित होती है तो क्या इलेक्ट्रॉन की गति भी हमें दिखती है?

चुंबकत्व से आवेश का रिश्ता

एक गति की ऊर्जा तो यह है – जब हम चलते हैं तो स्थान परिवर्तन दिखता है, एक गति की ऊर्जा वह है – जब अणु या परमाणु गति करते हैं मगर औसत गति शून्य है, गति है परन्तु स्थान परिवर्तन नहीं है। पिछली बार हमने समझा था कि ऐसी गति ताप के रूप में दिखती है – स्पर्श करो तो वस्तु गरम लगती है। इसी तरह जब धारा प्रवाह करो तो वो चुम्बकत्व के रूप में दिखती है। जब भी आवेश गति करता है तो विद्युत धारा हमेशा चुम्बकत्व के रूप में दिखती है। वास्तव में आवेश की गति की ऊर्जा ही चुम्बकत्व है। इसलिए जब भी चुम्बकीय क्षेत्र शून्य हो जाता है, आवेश चलते-चलते रुक जाता है, तो विद्युत वाहक बल प्राप्त होता है; गतिज ऊर्जा स्थितिज ऊर्जा में बदल जाती है, विभवांतर मिलेगा। यानी चुंबकीय क्षेत्र आवेश की गति की ऊर्जा है।

तो यह दूसरा महत्वपूर्ण बल, कूलम्ब का बल है। इसकी सहायता से हम प्रकृति के एक हिस्से को समझ पाते हैं – आकाशीय पिंडों वाली विशाल प्रकृति को नहीं, बल्कि धरातल की घटनाओं को समझते हैं इससे। श्यानता, पृष्ठ तनाव, प्रत्यास्थता, द्रव, ठोस, गैस, क्रिस्टल संरचना आदि यानी कि पदार्थों का व्यवहार समझ सकते हैं इससे।

एम बी वेलणकर: होलकर साइंस कॉलेज, इंदौर में भौतिक शास्त्र पढ़ाते हैं।

हिरोशिमा से पोखरण तक

प्रस्तुतिः ज़्यों द्रेज़

फोटो फ्रंट लाइन

तासुहिको ताकेता उन लोगों में से हैं जो हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरने के गवाह हैं। तब से वे परमाणु हथियारों के विरुद्ध मुहिम में जुटे हुए हैं। भारत और पाकिस्तान द्वारा किए गए बम विस्फोटों के तुरन्त बाद वे दोनों देशों के दौरे पर आए थे। भारत के परमाणु बम विस्फोट के पास के गांवों पोखरण और खेतोलाई में उन्होंने गांव के लोगों के साथ हुई बैठक में ये उद्गार व्यक्त किए।

हिरोशिमा बम: 'स्मिथसोनियन एअर एड स्पेस म्युज़ियम' मे रखी 'लिटिल बॉय' की प्रतिकृति। विनाशकारी परमाण्विक हथियारों के भुलावे में डालने वाले साधारण से नाम रखने की परम्परा तभी से शुरू हुई। रिहाइशी इलाके पर फेंके गए इस पहले परमाणु बम का वज़न लगभग 4000 कि. ग्रा. तथा ऊंचाई साढ़े दस फुट थी। इसमे साठ किलो ग्राम यूरेनियम इस्तेमाल किया गया था।

"किस मकसद से वह इस दुनिया में आई मैं सोचता हूं", हिरोशिमा के बम विस्फोट में बचे हुए तासुहिको ताकेता ने अपनी बड़ी बहन का ज़िक्र करते हुए कहा जो 16 साल की उम्र में बेहद कष्ट भोगते हुए चल बसी थी। वो उस जगह से 1.4 कि. मी. दूर थी जहां 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा पर न्यूक्लियर बम गिराया गया था। अगले दिन शाम उसको घर लाया गया, उस जगह से 7 कि. मी. दूर। ताकेता ने कहा, "उसका घर पहुंचना मेरे लिए अत्यन्त दु:खद याद है। वो एक गाड़ी में लेटी हुई थी, बुरी तरह जली हुई। उसके कपड़े बदन से चिपके हुए थे। हम उसके शरीर पर तेल लगाना चाहते थे पर हम उसके कपड़े नहीं उतार पाए। हमें कैंची से उसके कपड़ों को काटना पड़ा, और किस कदर उसे दर्द हुआ था उस समय! नौ अगस्त को वो मर गई, रोती हुई, चिल्लाती हुई – 'मां मेरे लिए कुछ करो, मां कुछ करो।' हम उसकी मदद के लिए कुछ नहीं कर पाए। कोई दवाई नहीं थी, कोई डॉक्टर नहीं था।"

"मेरा नाम तासुहिको ताकेता है। मैं हिरोशिमा का रहने वाला हूं, जहां 6 अगस्त, 1945 को एक एटम बम गिराया गया था, इतिहास में पहली बार। उस समय मैं बारह साल का था और छठी कक्षा में पढ़ता था। हमें सैन्य शिक्षा दी जाती थी, और बताया जाता था कि हमें राजा के लिए और देश के लिए अपनी जान भी हाज़िर रखनी चाहिए। जापान की ताकत दिन-पर-दिन कम होती जा रही थी। 1945 की शुरुआत तक जापान का समुद्र और आकाश, दोनों पर से कब्ज़ा खत्म हो चुका था।"

"मेरा घर हिरोशिमा से बाहर एक कस्बे में था, लेकिन मेरा स्कूल हिरोशिमा में था। 6 अगस्त, 1945 के दिन हमें छुट्टी मिली हुई थी। सुबह मुझे अपनी बड़ी बहन के घर खाना लेकर जाना था। अभी आठ बजे ही थे, मैं स्टेशन पर रेल का इंतज़ार कर रहा था। अचानक बड़ी तेज़ चमक हुई। सब कुछ नीला-सफेद-सा दिखने लगा। फिर तूफान की तरह गड़गड़ाहट हुई। मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा पेट कटकर खुल गया हो और मेरी अंतड़ियां बाहर आ गई हों। फिर मुझे गाल पर भीषण गर्मी महसूस हुई। मैंने उधर देखा जिधर से गर्मी आ रही थी, और मुझे सफेद धब्बा दिखा जो पीला होता गया, और फिर लाल, और एक बड़े आग के गोले में बदल गया। मुझे लगा जैसे वो मेरी ही तरफ आ रहा हो। वह एक दिल

सदाको और कागज़ के सारस : सदाको सासाकी उस बच्ची का नाम है जो हिरोशिमा पर बम फेंके जाने के समय सिर्फ दो साल की थी। 1955 में जब वह बारह साल की थी तब सदाको को लिम्फेटिक ल्यूकेमिया (कैंसर) हो गया। डॉक्टर के मुताबिक उसकी मौत काफी करीब थी। सदाको मरना नहीं चाहती थी, वह जीना चाहती थी। जापान की एक प्रचलित मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति कागज के एक हज़ार सारस बना लेगा तो उसकी मनचाही मुराद पूरी होगी। सदाको ने सभी दर्द कम करने वाली दवाएं खाना बंद कर दीं और प्रचलित जापानी मान्यता पर पूरा विश्वास रखकर कागज़ के सारस बनाने लगी। अभी वह कागज के टुकडो को मोडते हुए 645 सारस ही बना पाई थी . . . . . कि 25 अक्टूबर, 1955 को वह चल बसी।
सामने: सदाको के माता-पिता सदाको की तस्वीर के साथ यह फोटो 1984 में खींचा गया। **इस पेज पर:** दो हथेलियां सदाको के बनाए कागज़ के सारस समेटे हुए। मई 1958 मे हिरोशिमा शांति पार्क में, हिरोशिमा त्रासदी के शिकार बच्चो की याद में एक स्मृति चिह्न बनाया गया जिस में सदाको अपने हाथ में एक बड़ा-सा सारस लिए बीस फुट ऊंचे गुम्बद पर खड़ी है।

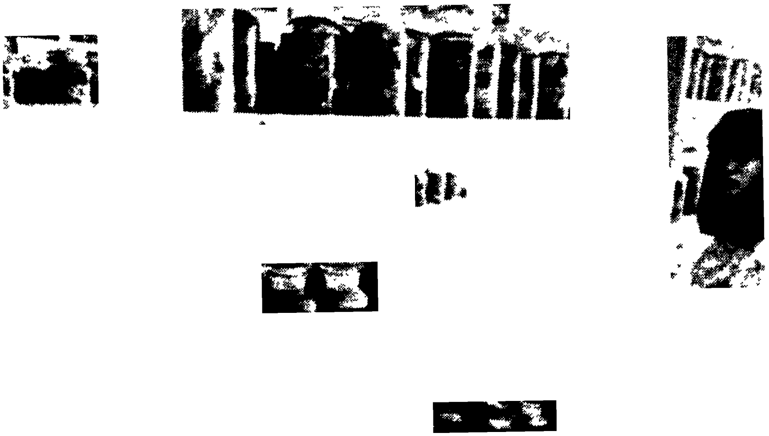

2000 जार: नागासाकी मेडिकल स्कूल के इस कमरे मे लगभग दो हज़ार जार सील बंद करके आज भी सुरक्षित रखे गए हैं। इन में उन लोगों के अवशेष हैं जो परमाणु बम विस्फोट में मारे गए थे। इतने सालों से इन्हें सुरक्षित रखा गया है – इस उम्मीद मे कि शायद कभी वैज्ञानिक इनके सहारे ये जानकारी हासिल कर पाएं कि रेडिएशन से शरीर को किस-किस तरह का नुकसान पहुंचता है।

दहला देने वाला नज़ारा था। मेरा गला बन्द हो गया। मैं यह सब उस जगह (Ground Zero) से 7 कि. मी. दूर से देख रहा था।''

''बाद में मुझे पता चला कि एनोला गे ने 9000 मीटर की ऊंचाई से बम छोड़ा था और 600 मीटर की ऊंचाई पर वह फटा था। जहां बम गिरा था, उस जगह का तापमान 6000 डिग्री तक पहुंच गया था। उस आग के गोले का व्यास 200 मीटर था। उस गोले के नीचे जो लोग तुरन्त खत्म नहीं हुए वे सब बचने का रास्ता ढूंढने के लिए तितर-बितर भाग रहे थे। कुछ देर बाद हमने लोगों को हिरोशिमा छोड़कर हमारे कस्बे की ओर भागते देखा। वे लोग प्रेत-आत्माओं की तरह लग रहे थे। कई जल गये थे – करीब-करीब नंगे, सूजे हुए चेहरे, या तेज़ गरमी से उनकी खाल उतर गई थी। कई लोग अपनी अंतड़ियां थामे हुए थे।''

''विस्फोट के दो दिन बाद मैं अपने दोस्तों के साथ फिर हिरोशिमा गया। पूरा शहर तबाह हो चुका था। हर जगह लाशें बिछी हुई थीं। हमारा स्कूल तहस-नहस हो चुका था। उस दिन हमसे बड़ी कक्षा के जो बच्चे स्कूल गए थे वो सब खत्म हो गए थे, सभी 183 बच्चे। हमारे चारो ओर लोग अभी भी मर रहे थे। कई चिल्ला रहे थे 'पानी दे दो, पानी दे दो'। मैंने एक बच्चे को देखा जो अपनी मां का दूध पीने की कोशिश कर रहा था, लेकिन मां मर चुकी थी। दफनाने या अन्तिम संस्कार का कोई साधन नहीं था, इसलिए लोग गड्ढे खोद-खोदकर लाशों को उनमें डाल जला रहे थे। हर जगह जली हुई लाशों की गन्ध फैली हुई थी।''

''उस समय हिरोशिमा की जनसंख्या चार लाख थी, जिसमें से 1945 के आखिर तक एक लाख चालीस हज़ार लोग मर चुके थे, इनमें भी 90 प्रतिशत विस्फोट के एक हफ्ते के भीतर ही मर गए। शहर की 76,000 इमारतों में से 70,000 पूरी तरह नष्ट हो चुकी थीं, या जल चुकी थीं।''

''लोग आज तक मर रहे हैं, रेडिएशन के दूरगामी प्रभाव (after effects) की वजह से। न्यूक्लियर युद्ध का सबसे खौफनाक पहलू यही है कि अगर आप बम विस्फोट में बच भी गए, तो सालों बाद भी आपको उसके कारण कोई बीमारी हो सकती है। पिछले साल तक कुल मिलाकर 2,02,118 मौतें दर्ज हुई हैं जिनकी वजह हिरोशिमा बम विस्फोट से जुड़ी हुई है। तब से बचे हुए लोग आज भी हर रोज़ तकलीफ और मौत के डर में जीते हैं। मैं

हिरोशिमा में बुद्ध : महात्मा बुद्ध की कासे की बनी प्रतिमा जो हिरोशिमा पर गिराए गए परमाणु बम की गर्मी के कारण पिघल गई। कांसा लगभग 1600 डिग्री फेरनहीट पर पिघलता है लेकिन हिरोशिमा में जिस स्थान पर बम फूटा था उसके ठीक नीचे का तापमान कुछ सेकंडों के लिए 7000 डिग्री फेरनहीट तक पहुच गया था।

चाहता हूं आप लोग इसे याद रखें।"

"आज के बम उस बम से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली हैं जो हिरोशिमा पर गिराया गया था। कल्पना कीजिए अगर भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध होता है तो उस परिस्थिति में क्या होगा? सरकारें न्यूक्लियर बम इसलिए बनाने की बात करती हैं, कि इससे युद्ध रोका जा सकता है। लेकिन न्यूक्लियर हथियारों से सुरक्षा नहीं लाई जा सकती। न्यूक्लियर युद्ध में कोई नहीं जीत सकता। सुरक्षा देशों के बीच अच्छे रिश्तों से आती है।

मैं कितने दिन जियूंगा मैं नहीं जानता, पर मैं जितने भी दिन जियूं, मैं शान्ति के लिए काम करते रहना चाहता हूं। मैं भारत और पाकिस्तान के लोगों को भी कहता हूं कि एक साथ मिलकर शान्ति के लिए काम करें। यह मेरा सपना है। जैसा कि जापान के दार्शनिक इचीरो मोरी साकी ने कहा है – हमें एटमों के 'चेन रिएक्शन' को मनुष्यों के 'चेन रिएक्शन' से रोकना होगा। चलिए हम सब मिलकर काम करें जिससे हम अपने पीछे अपने बच्चों और उनके बच्चों के लिए शान्तिपूर्ण दुनिया छोड़कर जा सकें। ये ही मेरी प्रार्थना है, और यही संदेश मैं हिरोशिमा से लाया हूं।"

यह लेख ज्यो द्रेज द्वारा तामुहिको ताकेता के टेप किए गए व्याख्यान का सम्पादित अंश है। ज़्यों द्रेज इस दौरे मे ताकेता के साथ थे।

ज़्यों द्रेज़: दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स मे डेवलपमेंट इकॉनोमिक्स' के विजिटिंग प्रोफेसर हैं। पूर्व मे 'लदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स' मे इस विषय के व्याख्याता रह चुके हैं।

हिन्दी मे अनुवाद **स्मिता अग्रवाल**। स्मिता अग्रवाल स्कॉलेस्टिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली के साथ काम करती है।

फोटोग्राफ 'एट वर्क इन द फील्ड ऑफ द बॉम' लेखक रॉबर्ट डेल ट्रिडिसि, प्रकाशक: हारप लिमिटेड लदन, से साभार।

मूल संपन्न समाज

शिकारी संग्राहक समाजों के बारे में एक आम धारणा बनी रही है कि वो विपन्नता में जी रहे थे और हैं। लेकिन जिसे हम विपन्नता कह रहे हैं कहीं वो संपन्नता तो नहीं. . . ?

मार्शल साहालन्स

प्रस्तुति – सी. एन. सुब्रह्मण्यम

शिकारी-संग्राहक बमुश्किल अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा कर पाते थे और कभी-कभी नहीं भी कर पाते थे। ... उन्हें भोजन की तलाश में हमेशा घूमते रहना पड़ता था। इस वजह से उनके पास गैर बुनियादी काम करने के लिए फुरसत ही नहीं थी... उनके लिए पर्याप्त उत्पादन का मतलब था किसी भी तरह जीवित रहना और उनके पास ज़रूरत से ज़्यादा सामग्री या समय दुर्लभ ही होता होगा।"*

हमारी धारणा में अमेरिका या अन्य कोई विकसित देश ही 'संपन्न समाज' कहलाने का अधिकार रखता है। अगर हम इसे संपन्नता मानते हैं तो शिकारी-संग्राहक समाज विपन्नता का चरम उदाहरण है।

शिकारी-संग्राहकों के बारे में आम लोग ही नहीं, इतिहासकार और अर्थशास्त्री क्या सोचते हैं इसका कुछ अंदाज़ा हम पाठ्यपुस्तकों से लगा सकते हैं। अगर हम इन पुस्तकों की बात मानें तो लगेगा कि ये लोग हमेशा विनाश की कगार पर खड़े थे। दरअसल सवाल यह नहीं बनता कि ये लोग कैसे जी लेते थे बल्कि यह कि क्या ये भी कोई जीवन था? इन पुस्तकों से

* शिकारी-संग्राहक समाज वे लोग जो खेती या पशुपालन करके भोजन पैदा नहीं करते, बल्कि प्राकृतिक तौर पर उपलब्ध जीव-जंतुओं-पौधों से भोजन जुटाते हैं।

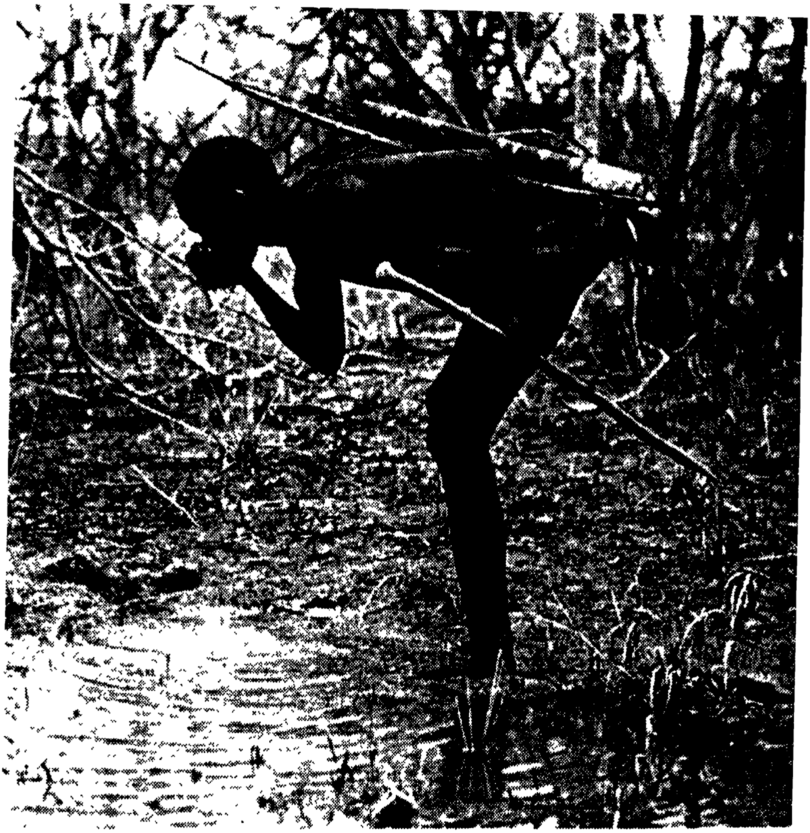

अफ्रीका के एक शिकारी-संग्राहक समाज (बुशमैन) का, शिकार पर निकला एक युवक प्यास बुझाते हुए।

यही आभास होता है कि शिकारी लोग हमेशा भुखमरी के साए में रहते थे; उनकी तकनीकी कुशलता इतनी निम्न स्तर की थी कि उन्हें पेट भरने के लिए सतत प्रयास करते रहना पड़ता था – फिर संस्कृति के निर्माण के लिए उनके पास फुरसत कहां!

लेकिन अगर आप वास्तविकता का अध्ययन करें तो एक विपरीत बात उभरती है – शिकारी-संग्राहक समाज 'मूल' संपन्न समाज था! यानी उस समाज के सभी लोगों की भौतिक ज़रूरतें आसानी से पूरी हो जाती थीं।

अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि मनुष्य

की ज़रूरतें असीम हैं और साधन सीमित हैं। यानी उसकी ज़रूरत और उत्पादन के बीच अंतर से तय होता है कि वह समाज संपन्न है कि विपन्न। इस दूरी को दो तरीकों से पाटा जा सकता है – उत्पादकता और उत्पादन को बढ़ाकर या ज़रूरतें सीमित रखकर। बाज़ार पर आधारित अर्थव्यवस्थाएं पहले मार्ग को अपनाती हैं, जबकि शिकारी-संग्राहक जैसे समाज दूसरे को। शिकारी लोग इस तरीके के सहारे अतुल्य संपन्नता हासिल कर पाए। अगर हम इस बात को समझें तो शिकारियों के विचित्र से व्यवहार को समझ सकते हैं। जैसे कि उनके पास किसी भी समय जो भी खाद्य सामग्री है वे उसे खाकर खतम कर देते हैं। उनके मन में कल के लिए या बुरे दिनों के लिए बचाकर रखने का ख्याल ही नहीं उठता है – साधन की प्रचुरता होने पर ही ऐसा व्यवहार संभव है।

दरअसल शिकारियों के बारे में बनी धारणाओं के पीछे बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था के ही हमारे अनुभव हैं। इस व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति के समक्ष चकाचौंध कर देने वाली उपभोग की चीज़ों की एक भरमार है, उसे उनमें से चुनना है कि वह किसे खरीदेगा और किसे नहीं। जब भी वह किसी एक चीज़ को खरीदेगा तो उसे अन्य चीज़ों को त्यागना होगा – क्योंकि खरीदने के उसके साधन सीमित हैं। यानी किसी चीज़ को पाने की खुशी के साथ किसी और चीज़ को न पाने का दुख भी इस व्यवस्था में निहित है। जब इस मानसिकता के साथ हम शिकारी मानव को देखते हैं, हमें उन पर दया आती है। हम मान लेते हैं कि उनकी चाहत हमारी जैसी ही है – ऐसी चाहत निश्चित ही पत्थर के औज़ारों से पूरी नहीं हो सकती है। इसलिए हम निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि उनका जीवन दरिद्रतापूर्ण रहा होगा।

मगर हम भूल जाते हैं कि कमी, किसी तकनीक से जुड़ी हुई नहीं है। अगर शिकारी लोग सीमित उद्देश्यों के लिए जीना चाहते हैं तो तीर कमान और टोकरी उन उद्देश्यों के लिए पर्याप्त हैं।

जिन लोगों ने वर्तमान में मौजूद शिकारी समूहों का अध्ययन किया – और वे उनके जीवन को नहीं समझ सके – उन्होंने यह विचार फैलाया कि वे भुखमरी से मर रहे हैं। उदाहरण के लिए यूरोप के लोग जो गेहूं की रोटी, कुछ सीमित सब्ज़ियां और गोश्त खाने के आदी हैं, शिकारियों के भोजन को कभी नहीं समझ पाए। उनके भोजन में अपार विविधता थी – वे तरह-तरह के बीज, फल, कीड़े मकोड़े, कंद, फूल, पत्ती, पक्षियों व जानवरों का गोश्त और न जाने क्या-क्या खाते थे – विवश होकर नहीं, बल्कि शौक से।

!कुंग बुशमैन का पड़ाव

के आदिवासियों को एक कप्तान ने देखा कि वे समय-समय पर एक खास पेड़ की गोंद इकट्ठा करके खाते थे; उसने लिखा, "बेचारे इतने दयनीय हालात में थे कि उन्हें कोई और पोषण नहीं मिल पाया और वे इस गोंद को खाने पर विवश हुए।" लेकिन 1841 में एक अन्य यात्री ने लिखा कि यह गोंद यहां के लोगों का एक प्रिय भोजन है।

गोंद लगने के मौसम में वे सब एक जगह इकट्ठा होकर इसे बटोरते हैं। इस बहाने उन्हें आपस में मिलने और बतियाने का मौका भी मिल जाता है। वह यह भी लिखता है, "... यहां का आदिवासी बखूबी समझता है कि उसके क्षेत्र में क्या, कहां और किस मौसम में होता है। वह इन चीज़ों को पाने का सबसे आसान तरीका भी जानता है। अतः वह अपने इलाके का भ्रमण इस प्रकार करता है कि उन चीज़ों को आसानी से हासिल कर सके। मैंने हमेशा उनके झोपड़ों में खाद्य सामग्री की भरमार ही देखी है।"

"एक तरह की भौतिक विपुलता"

दक्षिण अफ्रीका के कालाहारी रेगिस्तान में कुंग लोग रहते हैं। उनके भोजन के अलावा अन्य भौतिक ज़रूरतों के बारे में श्रीमती मार्शल कहती हैं, "सब के पास सारी चीज़ें हैं, और ज़रूरत पड़ने पर कोई भी इन्हें आसानी से बना सकता है। ... वे एक प्रकार की भौतिक विपुलता में जी रहे हैं। उनकी ज़रूरत की चीज़ें उन चीज़ों से बनती हैं जो उनके चारों ओर प्रचुरता से उपलब्ध हैं। कोई भी कितनी भी मात्रा में उनका उपयोग कर सकता है – लकड़ी, बेंत और हड्डियां जिनसे वे अपने औज़ार बनाते हैं; रस्सियों के लिए रेशे, झोंपड़ियों के लिए घास-फूस। शुतुरमुर्ग के अंडों के छिलकों से कुंग महिलाएं अपने लिए मनकों की मालाएं बना लेती हैं। वे

अंडों के इन खोलों को पानी भरने के लिए भी उपयोग करती हैं। ये खोल भी हर महिला के लिए पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं। आखिर वे केवल 10-12 बर्तन ही तो उठाकर चल सकती हैं। उनके घुमक्कड़ जीवन में उन्हें भोजन और पानी के लिए एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहना पड़ता है – तब उन्हें अपने सब सामान व छोटे बच्चों को उठाकर चलना पड़ता है। चारों ओर ज़रूरी सामग्री की प्रचुरता को देखते हुए कुंग लोगों ने भंडारण की व्यवस्था विकसित नहीं की है। न ही वे किसी चीज़ का दूसरा नग रखते हैं। वे किसी-किसी चीज़ का एक नग भी नहीं रखना चाहते – हो सके तो दूसरे से उधार ले लेते हैं। ऐसे में जमाखोरी और खूब सारी चीज़ों को इकट्ठा करना उनके लिए जीवन स्तर का द्योतक नहीं बना है।''

श्रीमति मार्शल के इस अवलोकन की पुष्टी दूसरे शिकारी समाजों के अध्ययन-कर्ताओं ने भी की है। यह देखा गया है कि किसी भी प्रकार की धन दौलत घुमक्कड़ जीवन में एक बाधा ही है। इस कारण ज़्यादातर शिकारी लोग कम सामान रखना पसंद करते हैं। यह भी देखा गया कि जो भी सामान उनके पास है उसका रख रखाव या हिफाज़त भी वे ठीक से नहीं करते हैं। वे उनके प्रति अति उदासीन हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्र का पहला कथन कि मनुष्य की ज़रूरतें अनगिनत हैं और साधन सीमित हैं – शिकारी-संग्राहक समाज के संदर्भ में यह कथन बिलकुल उल्टा हो जाता है; उनकी ज़रूरतें सीमित हैं और साधन असीम हैं। यह इसलिए नहीं कि उन्होंने सामान्य रूप से उठने वाली ज़रूरतों व इच्छाओं को काबू किया, बल्कि इसलिए कि ये ज़रूरतें व इच्छाएं उठी ही नहीं। हम उन्हें गरीब या बेचारे कहने के आदी हो गए हैं, केवल इसलिए कि उनके पास धन दौलत कम है। शायद हमें यह सोचना चाहिए कि धन दौलत की कमी के कारण वे ज़्यादा आज़ाद हैं। इस वजह से वे जीवन का भरपूर आनंद ले पाते हैं।

बुनियादी ज़रूरतें – खान पान

काफी समय से नृतत्वशास्त्रियों (Anthropologists) की धारणा रही है कि शिकारी-संग्राहकों की स्थिति इस कदर दयनीय थी कि वे हमेशा भुखमरी की कगार पर थे; अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में ही उनका पूरा समय निकल जाता था। लेकिन आज हम यह कह सकते हैं कि शिकारी- संग्राहक हम से कम काम करते हैं। भोजन बटोरने का काम लगातार न होकर थोड़े-थोड़े समय का होता है जिसके बीच में आराम का पर्याप्त समय होता है। किसी अन्य समाज व्यवस्था की तुलना में वे दिन में अधिक समय सो

बुशमैन लोगो की एक झोंपड़ी के अंदर का दृश्य

पाते हैं। इस नई धारणा का सबूत वर्तमान शिकारियों के अध्ययन से मिलता है।

1960 में ऑस्ट्रेलिया के दो शिकारी-संग्राहक समूहों का विधिवत अध्ययन मेककार्थी और मेक आर्थर ने किया था। पहले समूह का चौदह दिन अवलोकन हुआ। महिलाएं और पुरुष रोज़ औसतन कितने घंटे काम करते हैं इसका ब्यौरा देखिए:

दिन		1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
घंटे	म	7	3	0	7	6 5	1	4 5	5	6	4.5	0	6 5	7 5	.5
	पु	5	6 5	0	3 5	6 5	6	4 5	5	5	4 5	3	3.5	3 5	2

औसत दैनिक काम:

पुरुष: तीन घंटे 50 मिनट

महिला: तीन घंटे 44 मिनट

(एक और उदाहरण में औसत काम का समय पांच घंटे था।)

इस 'काम' में शिकार बटोरना, कूटना, पीसना, पकाना और औज़ार तैयार करना शामिल था।

इस अध्ययन से यह तो स्पष्ट हुआ कि इन लोगों को बहुत मेहनत नहीं

करनी पड़ती है। दूसरी यह कि उन्हें लगातार काम करते नहीं रहना पड़ता है। कुछ देर काम करने पर इतना भोजन इकट्ठा हो जाता है कि इसके बाद काफी समय उन्हें काम करने की ज़रूरत नहीं पड़ती है।

ऐसे में एक तीसरी दिलचस्प बात भी उभरती है – शिकारी लोग मौजूद आर्थिक संभावनाओं का पूरा उपयोग नहीं करते। मेक आर्थर कहते हैं, "शिकारी समूह एक दिन में जितना भोजन संग्रह करते हैं वे उससे कहीं ज़्यादा तादाद में कर सकते थे। महिलाएं हालांकि लगभग हर दिन संग्रहण का काम करती थीं, लेकिन वे बार बार आराम करने बैठ जाती थीं और पूरे दिन संग्रहण में नहीं लगी रहती थीं। पुरुष अगर एक दिन शिकार मारने में सफल हो जाते तो दूसरे दिन आराम फरमाते।" वे लोग जो भोजन खाते थे वह न केवल पर्याप्त था बल्कि विविधता पूर्ण था।

अंत में इस अध्ययन से यह बात भी उभरती है कि इन शिकारी लोगों के पास काफी फुरसत होती थी। यह उस धारणा के विपरीत है कि शिकारियों के पास फुरसत ही नहीं होती कि वे अपनी संस्कृति को विकसित कर पाएं। पाया गया कि, "गप शप के अलावा ये लोग दिन में कुछ घंटे ज़रूर सोते हैं। अगर पुरुष डेरे पर होते तो भोजन के बाद एक डेढ़ घंटे ज़रूर सोते। अकसर डेरे पर वे दिन भर सोते रहते थे।" यानी उनके पास फुरसत की कमी नहीं थी।

कुछ इसी तरह का अध्ययन रिचर्ड ली ने कलाहारी के कुंग शिकारियों के बारे में किया।

ली बताते हैं कि इस समूह में 35% लोग कोई काम नहीं करते (बच्चे आदि) और 65% लोग केवल 36% समय काम करते थे।* यानी प्रत्येक वयस्क हफ्ते भर में 15 घंटे ही काम करके खुद का और लगभग एक और इंसान का भरण पोषण कर लेता था। ली का वर्णन देखिए – "एक महिला एक दिन में अपने परिवार के लिए तीन दिनों का भोजन संग्रहित कर लेती है। बाकी समय वह अपने डेरे में आराम करती है, कढ़ाई करती है, दूसरों से मिलने जाती है या मेज़बानी करती है। रोज़ खाना पकाने, लकड़ी लाने आदि कामों में दो तीन घंटे लगते हैं। इस तरह रोज़ 'कुछ काम, बाकी आराम' की उनकी दिनचर्या साल भर चलती रहती है। पुरुषों का सिलसिला कुछ फर्क होता है। वे एक हफ्ता लगकर शिकार करते हैं और फिर दो तीन हफ्ते कोई शिकार नहीं करते। शिकार किस्मत की बात होती है – अगर उन्हें लगे कि किस्मत ठीक नहीं है तो कई महीने वे शिकार पर नहीं जाते। उन दिनों उनका प्रमुख काम मेहमानी, मेज़बानी और नाच गान होता है।

* एक दिन का अर्थ है लगभग छ–सात घंटे का काम।

ली कहते हैं कि यहां के लोगों की भोजन की रोज़ाना ज़रूरत औसतन 1975 कैलोरी है; जबकि उनका दैनिक उत्पादन 2140 कैलोरी है। यानी उनकी ज़रूरत से अधिक भोजन उनके पास उपलब्ध रहता है।

जब इन लोगों से पूछा गया कि वे खेती क्यों नहीं करते – वे कहते हैं, "हम पौधे क्यों लगाएं जब दुनिया में इतने सारे मोंगोमोंगो मेवे पड़े हुए हैं?"

अगर हम इस बात को समझें कि शिकारी, प्रकृति की विपुलता पर भरोसा करते हैं – मनुष्य के साधनों की कमी पर रोते नहीं रहते – तो हम उनके अन्य व्यवहारों को भी समझ पाएंगे।

– यह समय-समय पर देखा गया है कि जब वे एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं तो किसी जल्दी में नहीं रहते, आराम से टहलते-टहलते रुक-रुक कर जाते हैं। वे ज़रूर भोजन की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं, लेकिन दूसरी जगह भोजन मिलेगा इस बात का उन्हें भरोसा रहता है। इसलिए वे निश्चिंत होकर पिकनिक की मानसिकता लेकर चलते हैं।

– यह भी देखा गया है कि शिकारी लोग भविष्य के लिए योजना नहीं बनाते – आज जितना भोजन उपलब्ध है उसे वे पूरा खा लेते हैं। उन्हें यह चिंता नहीं कि कल अगर शिकार न मिले तो क्या होगा। न ही वे भोजन को बुरे समय के लिए जमा कर के रखते हैं। भोजन सामग्री को जोड़कर रखा जा सकता है, वे ज़रूर इस बात को जानते होंगे। लेकिन वे ऐसा नहीं करते हैं। शायद इसका एक कारण यह है कि भण्डारण से वे एक ही जगह रहने पर विवश होंगे जिसकी वजह से उन्हें उस क्षेत्र का अति-दोहन करना पड़ेगा। इससे वहां की विपुलता खतम हो जाएगी। इससे अच्छा होगा कि वे दूसरी जगह चले जाएं। आखिर प्रकृति ने उनके लिए इतना बड़ा भंडार जो बना रखा है!

दूसरी बात यह है कि शिकारियों की सामाजिक परंपराओं के अनुसार मिल बांटकर खाना अनिवार्य है। अगर ऐसा नहीं करें तो उसे हेय दृष्टि से देखा जाएगा। अगर अपने भंडार को सब में बांटना ही है तो भंडार बनाया ही क्यों जाए?

यानी तकनीकी रूप से भंडारण संभव होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से यह उपयुक्त नहीं है और सामाजिक दृष्टि से संभव नहीं है।

तो फिर शिकारी-संग्राहक जीवन

की सीमाएं क्या हैं? पहली सीमा तो यह है कि वे हमेशा 'घटता लाभ' वाले नियम से बंधे हैं। एक जगह शुरू में आसानी से पर्याप्त भोजन मिल सकता है, लेकिन वहीं लगातार रहते जाएं तो यह भोजन घटता जाएगा। अगर इसके बावजूद वे वहां रहते रहना चाहते हैं तो उन्हें या तो कम में काम चलाना पड़ेगा या फिर ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। ऐसे में बुद्धिमानी इसी में है कि वे दूसरी जगह चले जाएं।

यानी चलते रहने से ही यह विपुलता बनी रह सकती है। इससे और बातें भी तय हो जाती हैं। पहली तो यह कि वे कम-से-कम सामान अपने पास रखें, ताकि यात्रा सरल रहे। दूसरी बात, उन्हें अपने समूह में ऐसे लोगों की संख्या कम रखना पड़ती है जो खुद से चल फिर नहीं सकते हैं। बच्चे, बूढ़े आदि। अक्सर ऐसे लोगों को मरने के लिए छोड़ना पड़ता है।

हर समाज में अपनी ज़रूरतों व सीमाओं के अनुरूप जनसंख्या को निर्धारित करने के तरीके होते हैं। हर समाज के लिए जनसंख्या की सीमा अलग होती है, और उसे उस सीमा के अंदर रखने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। भोजन बटोरने वालों में 'जनसंख्या कारक' इस बात से तय होता है कि एक क्षेत्र का दोहन बढ़ाने से वहां का उत्पादन घटता जाएगा। इस लिए न केवल जनसंख्या को सीमित रखना होता है बल्कि उसे घुमक्कड़ जीवन के लिए तैयार भी रखना पड़ता है। इसी कारण शिकारी-संग्राहकों में शिशु हत्या, वृद्ध हत्या, बच्चों को लंबे समय तक मां का दूध पिलाना, उस अवधि के दौरान यौन संबंधों का निषेध आदि प्रथाएं पाई जाती हैं। शिकारी लोग अक्सर अफसोस के साथ बताते हैं कि वे लोग जो खुद यात्रा करने में सक्षम नहीं होते, वे ही मौत का शिकार होते हैं।

अंत में

अर्थव्यवस्था के विकास में बुनियादी विरोधाभास है, जिससे समाज एक साथ संपन्न और विपन्न दोनों बनता है। तकनीकी के विकास से साधन और उत्पादन बेहद बढ़ा है। इस कारण मानव समाज का अपने पर्यावरण पर नियंत्रण बढ़ा है। इससे एक स्थिरता आई है।

इन तकनीकों के साथ और उनकी मदद से ऐसे सामाजिक ढांचे बने हैं जिनके कारण धन कुछ लोगों के पास है और अधिकांश लोगों के पास निर्धनता है। शिकारियों के पास साधन कम हैं लेकिन वे गरीब नहीं हैं। गरीबी का ताल्लुक सामान की मात्रा से नहीं है – बल्कि वह लोगों के बीच एक रिश्ता है। गरीबी एक सामाजिक रिश्ता है। वह सभ्यता की देन है।

मार्शल साहलिन्स की पुस्तक '*स्टोन एज इकोनोमिक्स*' में छपे लेख 'द ओरिजिनल अफलुयेन्ट सोसायटी' पर आधारित।

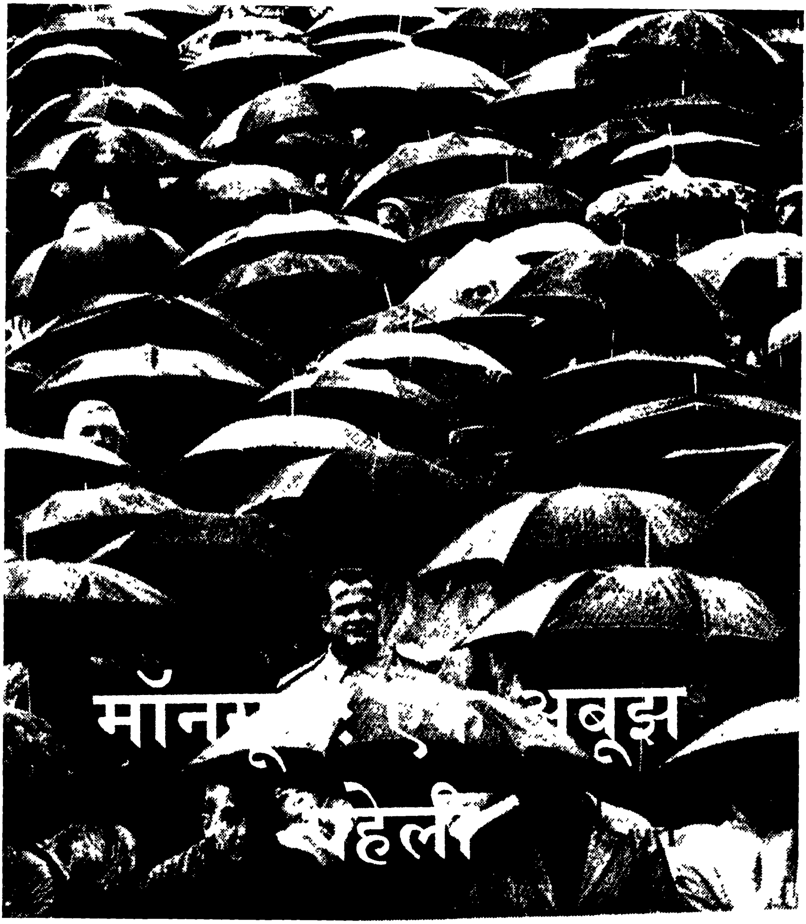

मॉनसून हर बरस आता है – बिला नागा, फिर भी वह एक अनूठा मेहमान है। इसका आगमन, इसकी वापसी, इसके साथ आने वाली बरसात की मात्रा और धरती पर उसका वितरण – इन सबका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आखिर, हमारे देश में होने वाली 70 प्रतिशत वर्षा तो मॉनसून के इन चार महीनों में ही होती है। सिंचाई के व्यापक विस्तार के बावजूद भी हमारे देश का प्रमुख आर्थिक स्तंभ – कृषि

– वर्षा पर काफी हद तक निर्भर करता है। और कृषि का प्रभाव उद्योग, राजनीति, संस्कृति और समाज के सभी कार्यों पर तो पड़ता ही है।

मॉनसून का आगमन

वर्षा से हमारा आशय यहां दक्षिण-पश्चिमी या ग्रीष्मकालीन मॉनसून से है, जो जून और सितंबर के बीच, दक्षिण भारत में तटीय आंध्र प्रदेश-तमिलनाडू तथा उत्तर भारत में काश्मीर को छोड़कर, हमारे देश के अधिकांश भाग पर छाया रहता है।

यद्यपि इसके अलावा नवंबर और फरवरी के बीच एक उत्तर-पूर्वी या शीतकालीन मॉनसून भी होता है जो तटीय तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश में वर्षा लाता है। लेकिन हम इसकी गहराई में नहीं जाएंगे।

मॉनसून सबसे पहले दक्षिणी केरल के तटवर्ती इलाकों और उत्तर-पूर्वी असम क्षेत्र में लगभग एक साथ जून के प्रथम सप्ताह में आता है। और फिर वह धीरे-धीरे सारे भारत में फैलता हुआ उत्तर-पश्चिम राजस्थान में लगभग एक महीने बाद, जुलाई के

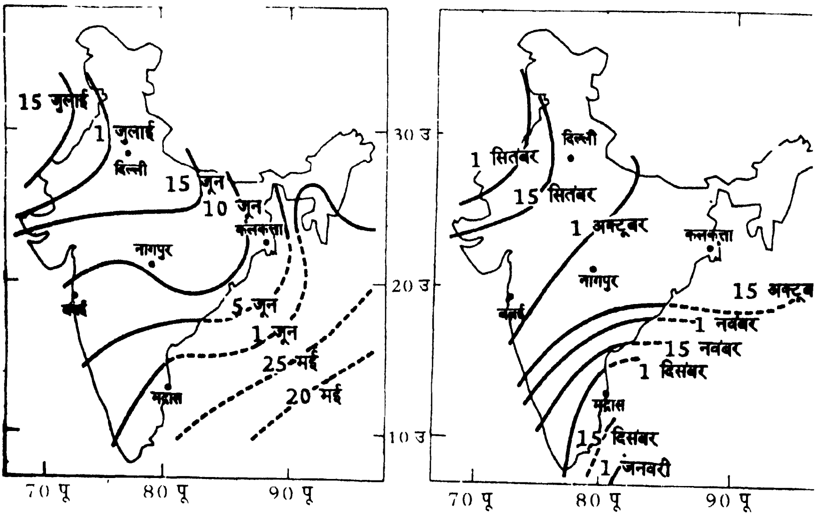

चित्र:1 भारत में अलग-अलग जगहों पर मॉनसून आगमन और प्रस्थान की तारीखों का ब्यौरा। बाए रेखा-चित्र में दक्षिण-पश्चिम मॉनसून का आगमन दिखाया गया है। इसी तरह दाएं रेखा-चित्र में भारत से मॉनसून प्रस्थान को दर्शाया गया है। प्रत्येक रेखा उन स्थानों को दर्शाती है जहां तक मॉनसून उस तारीख तक पहुंच गया है।

हवाओं के नाम

मौसम विज्ञान की चर्चा करते समय लाज़मी हो जाता है कि दुनियाभर में चलने वाली विभिन्न हवाओं की बात की जाए, चाहे वे उत्तरी व्यापारिक हवाएं हों, दक्षिण-पश्चिमी मॉनसून हो, धरती से 10-15 कि. मी. की ऊंचाई पर चलने वाली तेज़ पश्चिमी हवाएं हों . . .। इसलिए ज़रूरी हो जाता है कि शुरू में ही समझ लें कि इनके नामों से क्या पता चलता है, खासतौर पर उनकी दिशा के बारे में।

हवाओं का नाम उस दिशा से तय होता है जिधर से वे आ रही हों अर्थात दक्षिणी-पश्चिमी मॉनसून दक्षिण-पश्चिम दिशा से आ रहा है और उत्तर-पूर्व दिशा की ओर जा रहा है। पश्चिमी हवाएं पश्चिम से आकर पूर्व की ओर जा रही है। इस लेख में जहां भी हवाओं का ज़िक्र हो, यही तरीका अपनाया गया है।

प्रथम सप्ताह में पहुंचता है। मॉनसून के दौरान ज़्यादातर वर्षा जुलाई-अगस्त के महीनों में होती है। सितंबर के पहले सप्ताह से मॉनसून के अंत की शुरुआत होती है। पहले उत्तर-पश्चिम राजस्थान में, फिर उत्तर-पूर्वी असम और अंत में दक्षिणी केरल में। देश के दक्षिणी छोर में यह मॉनसून आगामी उत्तर-पूर्वी शीतकालीन मॉनसून में लगभग विलीन हो जाता है।

यदि आप ऊपर बताई गई कालावधि पर फिर से गौर करेंगे तो यह बात साफ हो जाएगी कि राजस्थान में मॉनसून की अवधि कम होती है और केरल व असम में ज़्यादा। परिणामत: भारत के उत्तरी एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के मुकाबले दक्षिणी एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में वर्षा कहीं ज़्यादा होती है। वर्षा की कुल मात्रा उत्तर-पश्चिमी दिशा में क्रमश: कम होती जाती है। उदाहरण के लिए कर्नाटक के तटवर्ती इलाकों में औसतन 2848 मि.मी. वर्षा होती है जबकि दूसरे छोर पर राजस्थान में यह सिर्फ 252 मि.मी. ही हो पाती है।

अन्य क्षेत्रीय अंतर भी होते हैं। केरल कर्नाटक व असम में तो वर्षा टूट पड़ती है लेकिन जैसे ही हम राजस्थान की ओर चलते हैं तो वर्षा का उठाव अपेक्षाकृत क्रमिक हो जाता है। कुछेक मॉनसून क्षेत्रों में बारिश होती ही नहीं या फिर बहुत थोड़ी, जैसे पश्चिमी घाट व खासी पहाड़ियों के पिछवाड़े। और ऐसा भी नहीं कि हर जगह लगातार बारिश हो। बीच-बीच में मौसम शुष्क भी रहता है।

मॉनसून की शुरुआती समझ

पुराने समय में लोगों को यह नहीं मालूम था कि मॉनसून साल-दर-साल क्यों आता है, लेकिन उन्होंने इन हवाओं का फायदा ज़रूर उठाया। शीतकाल में वे सामान्यतः उत्तर-पूर्वी व्यापारी हवाओं के सहारे भारत से अफ्रीका-अरब देशों तक जहाज़ों में जाते थे और जून-जुलाई की मॉनसून हवाओं पर लौटते थे। व्यापार और कृषि के संदर्भ में मॉनसून के आगमन का पता लगाना लोगों के लिए ज़रूरी था। इसका अंदाज़ वे विभिन्न पौधों, जानवरों एवं पक्षियों के व्यवहार में अंतर के अवलोकन से लगाते थे; मसलन पपीहे की पुकार से। सोलहवीं शताब्दी में अरबों ने वैज्ञानिक तरीकों से इसके आगमन का अनुमान लगाने की कोशिश की। मॉनसून शब्द का उद्‌भव ही अरबी लफ्ज़ मौसम से हुआ है।

विख्यात एडमंड हैली (हैली पुच्छलतारे वाले) उन पहले वैज्ञानिकों में से थे जिन्होंने सन् 1686 में मॉनसून की प्रक्रिया की एक वैज्ञानिक परिकल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार, गर्मियों में जब महाद्वीप खूब तप जाता है तो हवा गर्म होकर फैलती है और ऊपर उठती है। नतीजतन पूरे इलाके में हवा का दबाव कम हो जाता है, और समुद्र की शीतल, नमी-प्रधान भारी हवा तेज़ी से इस निम्न दबाव

चित्र:2 मॉनसून की हवाएं समुद्र से भूमि की ओर बहती हैं। तपती ज़मीन के सम्पर्क में आकर हवाएं गर्म हो जाती हैं और ऊपर उठने लगती हैं। फिर ऊपर जाकर ये हवाएं विपरीत दिशा मे बहती हैं।

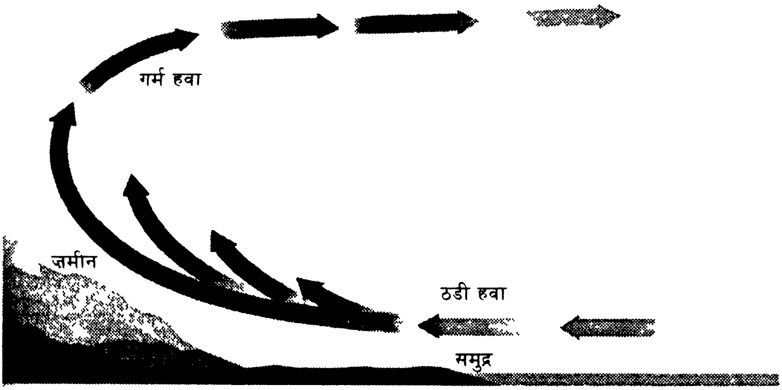

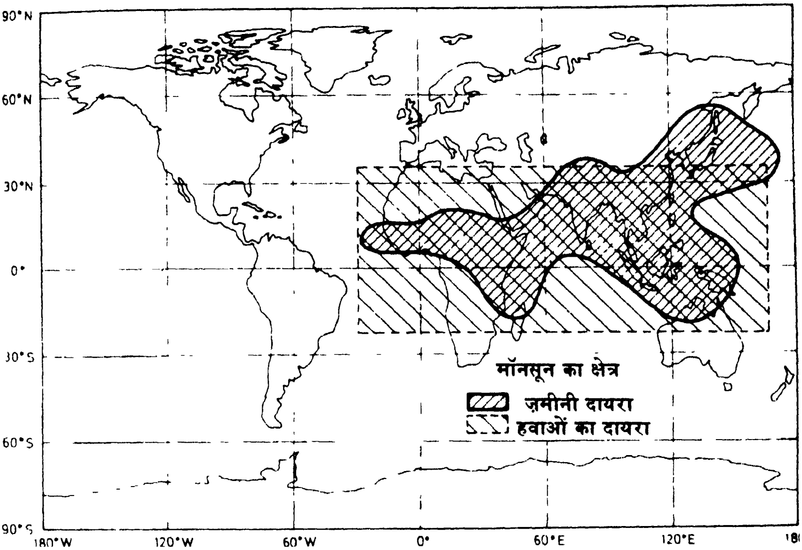

चित्र:3 मॉनसून का क्षेत्र – गाढ़ी काली रेखा उस इलाके को दर्शाती है जहां पर धरती की सतह पर मॉनसून का प्रभाव दिखाई देता है। इस दायरे में मध्य अफ्रीका व दक्षिण-पूर्वी एशिया का अधिकाश हिस्सा आता है। अगर हवाओं के बहाव के आधार पर मॉनसून तंत्र को परिभाषित किया जाए तो वह चित्र में बनाए गए आयत के तहत आ रहे संपूर्ण इलाके को घेर लेता है।

वाले क्षेत्र में घुसकर सूखे मैदानी इलाकों में बारिश लाती है। जबकि सर्दियों में इस प्रक्रिया का ठीक उल्टा होता है।

मूल रूप से मॉनसून में यही होता है। इसलिए लगभग सभी महाद्वीपों पर मॉनसून जैसी हवा-प्रणाली विकसित होती है – जैसे एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा उत्तर अमेरिका में भी। परंतु मॉनसून शब्द साधारणत: भारतीय मॉनसून से ही जुड़ा है, क्योंकि ऐसी हवा प्रणाली का सबसे स्पष्ट और नियमित विकास एशियाई महाद्वीप पर ही होता है।

लेकिन यह सारा नज़ारा और भी अधिक दुरूह है। आखिर गर्म हवा उठकर जाती कहां है? महासागरों की सतह की हवा निकलने से क्या वहां वाकई शून्य उत्पन्न होता है? इन सवालों के जवाब गुब्बारों, हवाई जहाज़ तथा उपग्रहों के उपयोग से मिले हैं। लोगों ने देखा कि वायुमंडल की विभिन्न ऊंचाईयों पर भी हवाएं बहती हैं और

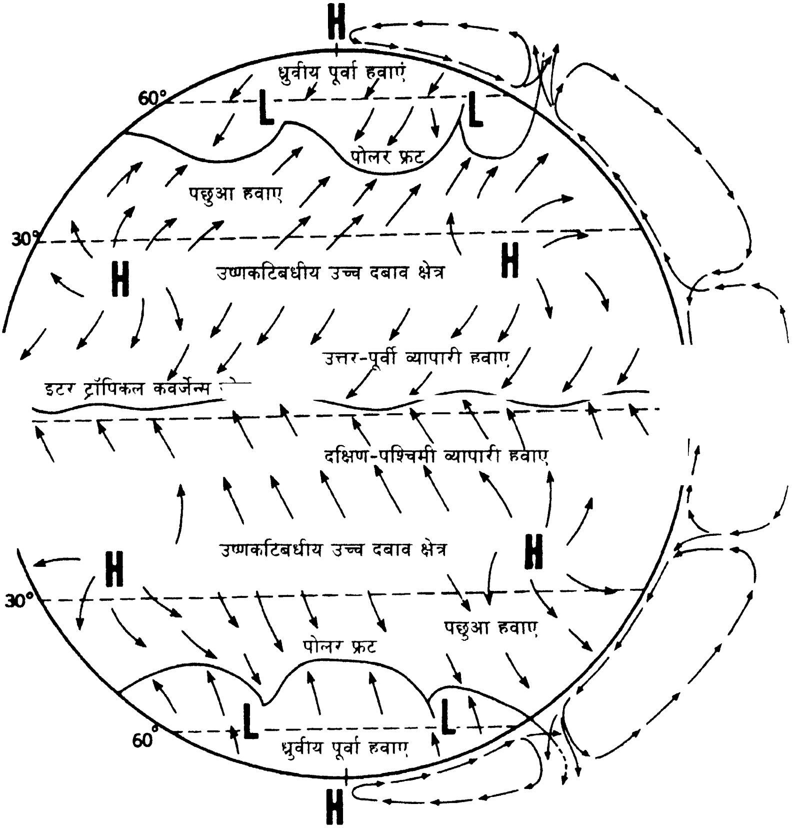

चित्र:1 पृथ्वी की सतह पर सामान्य हवा प्रणाली। हवा उच्च से निम्न दबाव क्षेत्रों की ओर बहती है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये हवाएं कोरियोलिस प्रभाव के कारण उत्तर-पूर्वी (या दक्षिण-पश्चिमी) दिशा में बहती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्वी (या उत्तर-पश्चिमी) दिशा में।

उच्च दाब क्षेत्र को 'एच' से और निम्न दाब क्षेत्र को 'एल' से दिखाया गया है। उच्च दाब क्षेत्र उष्ण कटिबंधीय पट्टियों (Sub-Tropical Belt) और ध्रुवों पर पाए जाते हैं। निम्न दाब क्षेत्र भूमध्यरेखा के पास और ध्रुवीय वृतो पर होते हैं।

पृथ्वी के गोले के बाहर दाहिनी तरफ तीरों के निशान द्वारा वायुमंडल में हवा का बहाव दर्शाया गया है। वायुमंडल में हवा का बहाव गोलाकार पथ में होता है। सतह पर हवा का बहाव एक दिशा मे हो तो ऊपर वायुमडल में यह विपरीत दिशा में होता है।

इंटर-ट्रोपिकल कन्वर्जेंस ज़ोन

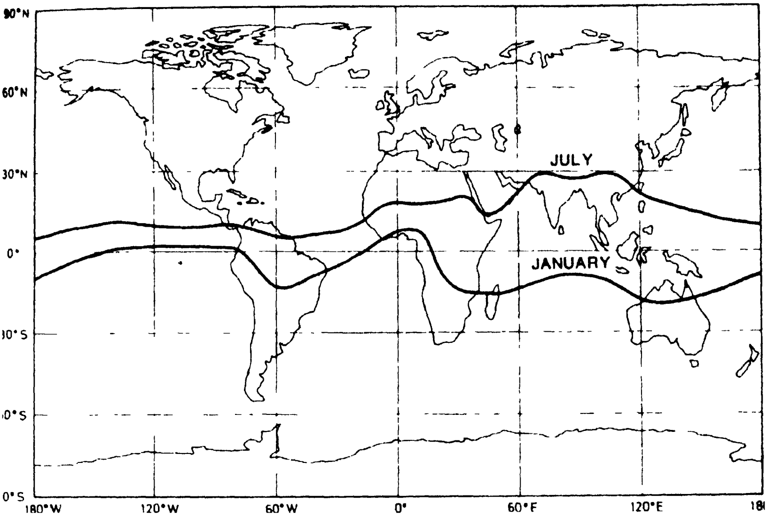

धरती के तपने से भूमध्य रेखा के आसपास की हवाएं गर्म होकर ऊपर उठती हैं। इस वजह से भूमध्य रेखा पर एक निम्न दाब क्षेत्र बनता है। निम्न दाब क्षेत्र के कारण उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध की तरफ से हवाएं इस क्षेत्र की तरफ बहती हैं और यहां आकर आपस में मिल जाती हैं। इसलिए इस क्षेत्र को इंटर-ट्रोपिकल कन्वर्जेंस ज़ोन कहते है।

परंतु सालभर सूर्य की सीधी किरणें कर्क और मकर रेखा के बीच अलग-अलग जगहों पर पड़ती हैं इसलिए यह निम्न दाब क्षेत्र भी नियमित रूप से जगह बदलता रहता है। जून में सूर्य जब कर्क रेखा पर चमक रहा होता है तो निम्न दाब का यह क्षेत्र खिसककर भूमध्य रेखा से दूर उत्तर की ओर चला जाता है। दिसंबर मे सूर्य की सीधी किरणें मकर रेखा पर पड़ती हैं और निम्न दाब की यह पट्टी दक्षिणी गोलार्द्ध में खिसक जाती है।

ये हवाएं सतही हवाओं के साथ एक गोलाकार चक्र में जुड़ती हैं। यानी, सतही हवाएं जब ऊपर उठती हैं, तब ऊंचाइयों पर वे विपरीत दिशा में बहकर सतह पर फिर से उतरती हैं।

हवाओं के घुमावदार चक्कर

अभी हमने हवाओं के बहने की बात की। अब कल्पना कीजिए कि यदि हवाएं न बहें तो क्या होगा? होगा यही कि उष्णकटिबंधीय व भूमध्यरेखीय

इलाकों (जहां सूरज की किरणें सीधी पड़ती हैं) में लगातार गर्मी पड़ने से वहां का तापमान बढ़ता जाएगा। जबकि ध्रुवीय क्षेत्र (जहां सूरज की किरणें तिरछी पड़ती हैं) और ठंडा होता जाएगा। हम यह भी कह सकते हैं कि हवाएं, और काफी हद तक समुद्र की धाराएं ही वे परिवहन एजेंसिया हैं जिनके द्वारा पृथ्वी पर चौतरफा उष्मा का वितरण होता है। वे अधिक ताप वाले क्षेत्रों से उष्मा को कम ताप वाले क्षेत्रो तक बहा ले जाती हैं। हवा का यह गोलाकार बहाव पृथ्वी के लगभग सभी हिस्सों में एक उचित तापमान बनाए रखता है।

मार्च और अक्टूबर में सूरज लगभग भूमध्य रेखा के ऊपर होता है। उस समय यहां की हवा गर्म होकर ऊपर उठती है। जिससे यहां हवा की कमी हो जाती है यानी यहां कम दबाव के क्षेत्र बन जाते हैं। इस कम दबाव के क्षेत्र में हवा की कमी को दूर करने के लिए दोनों ओर से उष्णकटिबधों की ठंडी हवाएं बहकर यहां आती है। हवा अभिसरण (Convergence) के इस क्षेत्र को उष्णकटिबधीय अभिसरण क्षेत्र (Inter-Tropical Convergence Zone) कहते हैं। आमतौर पर हमारी धारणा होती है कि हवाएं सीधी रेखा में इन कम दबाव क्षेत्रों की ओर दौड़ पड़ती होगी, लेकिन दरअसल ऐसा नहीं होता। ये हवाएं सीधी नही बल्कि तिरछी बहती हैं। यह तिरछापन पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण होता है, जिसे 'कोरियोलिस प्रभाव' कहते हैं।

भूमध्यरेखा की गर्म हवा ऊपर उठकर ध्रुवों की ओर बहती है परंतु पृथ्वी के अक्ष पर घूमने के प्रभाव से वहां तक नहीं पहुंचती। कर्क व मकर रेखाओं के आसपास वह वापस पृथ्वी की सतह पर उतरती है। ये दोनों रेखाएं उच्च दाब क्षेत्र होते हैं। इसी प्रकार के गोलाकार प्रवाह उष्णकटिबंधों व ध्रुवीय वृतों (निम्न दाब क्षेत्र) के बीच, तथा इन वृतों व ध्रुवों (उच्च दाब क्षेत्र) के बीच भी चलते हैं। पृथ्वी की सतह पर यह वही हवा प्रणाली है जिसके बारे में हम स्कूल की भूगोल की कक्षाओं में पढ़ते हैं।

हम जानते हैं कि सूर्य साल भर भूमध्यरेखा के ऊपर नहीं रहता है। जून में मध्यान्ह के समय वह कर्क रेखा पर तथा दिसंबर में मकर रेखा पर होता है। इसलिए जून में उत्तरी गोलार्द्ध और दिसबर में दक्षिणी गोलार्द्ध अधिक गर्म होता है। और इन दोनों गोलार्द्धों के बीच उष्मा का संवहन मॉनसून की हवाओं द्वारा भी होता है। वास्तव में मॉनसून प्रणाली उष्मा वितरण का एक वायु तंत्र है।

मॉनसून की हवा प्रणाली

अक्टूबर और मार्च के बीच सूर्य की सीधी किरणें पड़ने से भूमध्य रेखा के आसपास के दक्षिणी गोलार्द्ध का

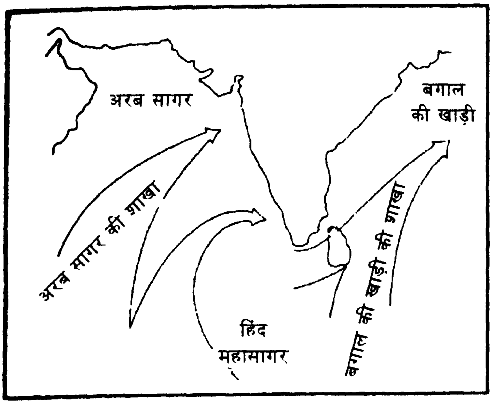

चित्र: 6 मॉनसून प्रवाह की मुख्य दो शाखाएं। ये हवाएं सतह से 5-6 कि. मी. की ऊंचाई तक फैली होती हैं।

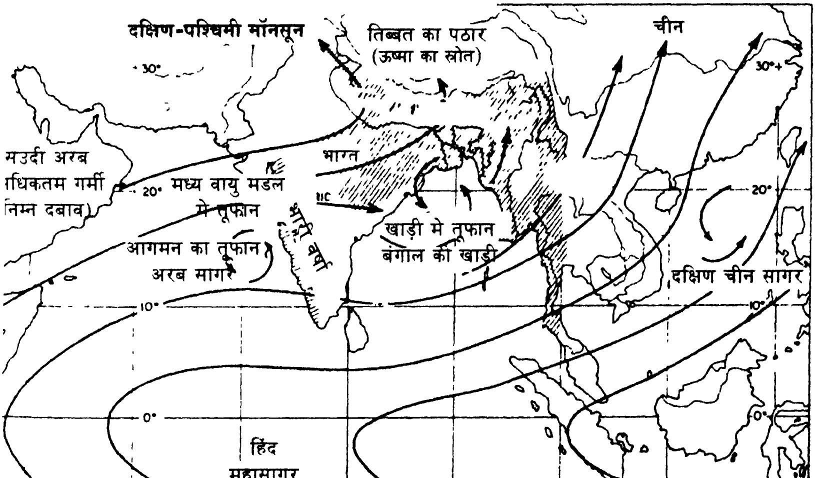

चित्र:7 भारतीय उपमहाद्वीप की सतह पर दक्षिण-पश्चिमी हवाओं का बहाव। दक्षिणी गोलार्द्ध की दक्षिण-पूर्वी हवाएं भूमध्य रेखा को पार कर धरती के घूमने के कारण (कोरियोलिस प्रभाव की वजह से) दक्षिण-पश्चिमी हवाएं बन जाती हैं। कोरियोलिस प्रभाव के कारण भूमध्य रेखा यानी शून्य अक्षांश पर हवाओं के रुख का पलटना स्पष्ट दिख रहा है।

इलाका काफी गर्म हो जाता है। इस वजह से वहां की गर्म हवा तपकर ऊपर उठती है और वहां पर एक निम्न दाब क्षेत्र बन जाता है। उस समय तिब्बत के पठार से लेकर गंगा के मैदान तक के क्षेत्र में उच्च दाब होता है; इसलिए 30 डिग्री और भूमध्यरेखा के बीच पृथ्वी की सतह पर उत्तर-पूर्वी हवाएं भूमध्यरेखा की तरफ बह रही होती हैं। उसी वक्त वायुमंडल में तीन कि. मी. की ऊंचाई पर तिब्बत के पठार के उत्तर और

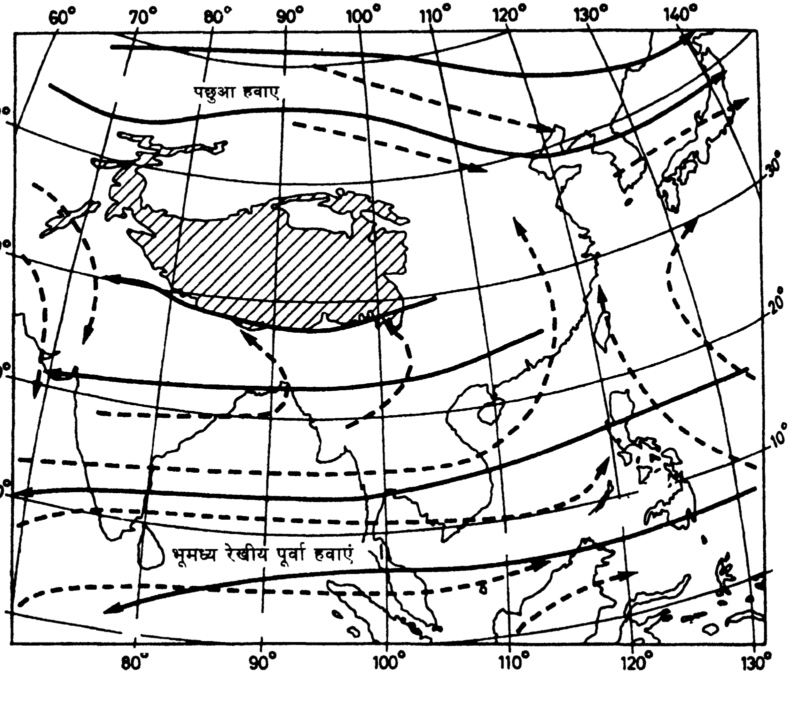

चित्र:8 गर्मी के दिनों में दक्षिण एवं पूर्वी एशिया के ऊपर जेट हवाओं की स्थिति। नक्शे में मोटी-काली रेखाओं से दर्शाई हवाएं 6000 मीटर की ऊंचाई पर बह रही हैं। टूटी हुई रेखाओं से दर्शाई हवाएं 600 मीटर की ऊंचाई पर बह रही हैं। तिरछी लाईनों से दिखाया गया भूभाग तिब्बत का पठार है। इस चित्र को ध्यान से देखिए, जेट हवाओं और निचली हवाओं की दिशा में क्या कोई खासियत नज़र आती है

दक्षिण दोनों तरफ तेज़ पछुआ हवाएं पश्चिम से पूर्व की ओर बह रही होती हैं।

अब देखते हैं, दक्षिण-पश्चिमी मॉनसून की हवा प्रणाली। मार्च के बाद स्थिति बदलने लगती है। अप्रैल और जून के बीच, जब सूर्य की सीधी किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा और भूमध्यरेखा के बीच पड़ती हैं, तब इस क्षेत्र की भूमि अधिक तपने लगती है। सबसे अधिक गर्मी तो मध्य एशिया महाद्वीप व उत्तर-पूर्वी अफ्रीका के रेगिस्तानों, अरब देशों तथा भारत में होती है। इस तेज़ गर्मी की वजह से अब निम्न दाब का क्षेत्र भूमध्यरेखा से सरककर 20-25 डिग्री उत्तरी अक्षांश तक आ जाता है। और वहां का सामान्य उच्च दाब क्षेत्र भी उत्तर की ओर स्थानांतरित हो जाता है। भारत के संदर्भ में निम्न दाब का यह क्षेत्र उत्तर-पूर्वी अफ्रीका से दक्षिण-पूर्वी एशिया तक गंगा के मैदानी इलाके में से होकर एक लंबी पट्टी के रूप में निकलता है। गंगा-मैदान के निम्न दाब क्षेत्र में हिन्द महासागर की ठंडी और नमी प्रधान हवा बहने लगती है; दक्षिण गोलार्द्ध की ये दक्षिण-पूर्वी हवाएं भूमध्यरेखा पार करके कोरियोलिस प्रभाव के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में दक्षिण-पश्चिमी दिशा से प्रवेश करती हैं। इन हवाओं के काले बादल 6 कि.मी. ऊंचाई तक फैलते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप पर पहुंचकर वे दो शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं – अरब सागर की शाखा व बंगाल की खाड़ी की शाखा। बंगाल की खाड़ी वाली शाखा भारत के पूर्वी इलाकों में बारिश करती हुई गंगा के मैदानी हिस्सों की ओर बढ़ती है। अरब सागर की शाखा का एक हिस्सा पश्चिमी घाट से टकराकर आगे बढ़ता हुआ बंगाल की खाड़ी की शाखा में मिल जाता है।

एक महीने के अंदर मॉनसून प्रवाह सारे उपमहाद्वीप पर छा जाता है। उत्तर में हिमालय पर्वत शृंखला हवा के बहाव के रास्ते में बाधा बन जाती है। यह भारतीय मॉनसून क्षेत्र की उत्तरी सीमा है। यहां पहुंचने वाली कुछ हवाएं तराइयों के सहारे पश्चिम की ओर मुड़ जाती हैं और उत्तर-पश्चिमी दिशा में बहने लगती हैं। जबकि हिमालय के पूर्व में हवा का प्रवाह बर्मा और थाईलैंड से इंडोचीन व दक्षिण चीन की ओर होता है।

तिब्बती पठार (मॉनसून की उत्तरी सीमा) तक पहुंचने के बाद हवा कहां जाती है? हमने पहले ही देखा था कि मॉनसून के पहले (गर्मी के दिनों में) उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्र के ऊपरी वायु-मंडल में पश्चिमी हवाएं बहती हैं। मॉनसून में यह प्रवाह भी सतही प्रवाह की तरह पलट जाता है और पूर्वी हवाएं चलने लगती हैं। ये पूर्वी हवाएं लगभग 12 कि.मी. ऊंचाई पर दिखाई देती हैं और उनका सबसे शक्तिशाली

और तेज़ प्रवाह – जिसे जेट प्रवाह कहते हैं – ट्रोपोपॉज़ के नज़दीक, लगभग 14 कि.मी. की ऊंचाई पर होता है। जेट प्रवाह, हवा की वह धारा है जो कई हज़ार कि.मी. लंबी, कई सौ कि.मी. चौड़ी तथा कई कि.मी. गहरी होती है।

तिब्बती पठार की भूमिका

मॉनसून की हवाएं ऊपरी वायुमंडल के पूर्वी प्रवाह में कहां और कैसे मिल जाती हैं? इस प्रक्रिया में तिब्बत के पठार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जुलाई के महीने में, जब भारतीय उपमहाद्वीप पर मॉनसून छाया होता है, तब तिब्बत पठार बहुत तपता है। यह पठार तकरीबन 2000 कि.मी. लंबा और 600-1000 कि.मी. चौड़ा है। इसके फलस्वरूप मॉनसून की हवाएं तिब्बत के पठार पर पहुंचकर ऊपर की तरफ बहती हैं और ऊंचाई पर पूर्वी हवाओं में मिल जाती हैं। ऊपरी वायुमंडल का प्रवाह भूमध्यरेखा के पास उत्तरी गोलार्द्ध में हिन्द महासागर क्षेत्र में सतह पर उतरता है। इस प्रकार मॉनसून प्रवाह का गोलाकार परिपथ पूरा होता है।

मॉनसून खत्म होने के वक्त सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध की मकर रेखा की ओर स्थानांतरित होता है। अब उत्तरी गोलार्द्ध में ठंड पड़ने लगती है। एशिया का साइबेरिया इलाका इतना ठंडा हो जाता है कि वहां का हवा दबाव बढ़ता है और दिसंबर तक यहां उच्च दबाव क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। इस वक्त निम्न दाब क्षेत्र भी दक्षिण की ओर स्थानांतरित होता है और दिसंबर तक मकर रेखा के आसपास जा पहुंचता है क्योंकि उस वक्त सूर्य उस क्षेत्र के ऊपर रहता है; साइबेरिया के उच्च दाब क्षेत्र की उत्तर-पूर्वी हवाएँ भूमध्यरेखा के कम दाब क्षेत्र की ओर बहने लगती हैं। ये हवाएं मॉनसून हवाओं का मुकाबला करती हैं जिसके फलस्वरूप मॉनसून प्रवाह खत्म हो जाता है। ऊंचाई पर भी हवाओं की दिशा पलटती है और पूर्वी हवाओं के बदले पश्चिमी हवाएं बहने लगती हैं। दिसंबर तक यह बदलाव पूरा हो जाता है।

उष्मा का वितरण

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि वायु प्रणाली उष्मा के वितरण में प्रमुख भूमिका निभाती है। अब इस हवा प्रणाली को उष्मा वितरक के रूप में देखिए। गर्मी के दिनों में एशियाई महाद्वीप खासकर भारतीय उपमहाद्वीप की सतह की उष्मा वाष्प के रूप में वायुमंडल में स्थानांतरित होती है (क्योंकि वाष्प बनने की प्रक्रिया में पानी गर्मी सोखता है)। मॉनसून के मौसम में यह वाष्प बारिश के रूप में गिरती है और इस प्रक्रिया में वह ऊपरी वायुमंडल में उष्मा छोड़ती है

(क्योंकि वाष्प जब पानी में बदलती है तब वह अपनी यह ऊष्मा मुक्त करती है)। यह ऊष्मा, और तिब्बतीय पठार की ऊष्मा ऊपरी वायुमंडल की पूर्वी हवाओं को गति दिलाने वाली ऊर्जा प्रदान करती है। यह ऊष्मा इन पूर्वी हवाओं के द्वारा दक्षिणी गोलार्द्ध के हिन्द महासागर में स्थानांतरित होती है। (उत्तर-पूर्वी मॉनसून में, सितंबर से मार्च के बीच ऊष्मा स्थानांतरण विपरीत दिशा में दक्षिणी से उत्तरी गोलार्द्ध में होता है)।

एक पहेली

हालांकि यह सही है कि विभिन्न ऊंचाइयों और विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की ताप एवं दाब भिन्नताओं के कारण मॉनसूनी हवाएं चलने लगती हैं। फिर भी मॉनसूनी बादलों के भीतर की वाष्प के बारिश में बदलने की प्रक्रिया का यह एक पर्याप्त कारण नहीं हो सकता, और न ही मॉनसूनी हवाओं को उत्तरी दिशा में तिब्बतीय पठार तक लाने के लिए यह पूरी तरह से सक्षम हो सकता है। दरअसल तकरीबन 500 कि. मी. चलने के बाद मॉनसून थोड़ा ठहर जाता है, इसके बाद यह ज़रूरी हो जाता है कि निम्न दाब के ऐसे स्थानीय क्षेत्र बनें जो हवा की धाराओं को उत्तर की ओर आगे बढ़ाएं और बादलों की वाष्प को वर्षा में बदल दें। उदाहरण के तौर पर मॉनसून की अरब सागर की शाखा अरब सागर में बनने वाले निम्न-दाब क्षेत्र के कारण ही प्रारंभ में उत्तर की ओर बढ़ती है। परंतु निम्न दाब क्षेत्र उत्पन्न करने वाली मुख्य प्रक्रियाएं बंगाल की खाड़ी में निर्मित होती हैं – तूफान के रूप में। ये तूफान जब भारतीय उपमहाद्वीप के ऊपर पश्चिमी दिशा में चलते हैं तो हम मध्य मैदानी भागों में बारिश का उपहार पाते हैं।

मॉनसून में अक्सर एक रुकावट आती है। ऐसा तभी होता है जब सामान्य मॉनसूनी दाब स्थितियों में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए यदि तिब्बत के पठार का उच्च दाब क्षेत्र क्षीण होता है तो मॉनसून का निम्नदाब क्षेत्र हिमालय की तराइयों में पहुंचता है, और मॉनसूनी हवाएं कमज़ोर पड़ने लगती हैं। ऐसे में हिमालय के तराई क्षेत्र को छोड़ सारे देश में बारिश बंद हो जाती है, जबकि तराइयों में भारी वर्षा होती है और यहां की नदियों में बाढ़ तक आ जाती है।

चूंकि मॉनसून एक सार्वभौमिक प्रणाली है इसलिए उसे प्रभावित करने वाले कई सार्वभौमिक कारक हैं जैसे स्ट्रेटोस्फीयर के वायु प्रवाह, समुद्री धाराएं (उदाहरणतः एलनीनो), दक्षिणी गोलार्द्ध के दाब क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन, हिमालय के बर्फ कवच का विस्तार, समुद्र सतह का तापमान, मॉनसून के निम्न दाब क्षेत्र और तिब्बत

के पठार के उच्च दाब क्षेत्र की स्थिति आदि। लेकिन इन सार्वभौमिक कारकों के अलावा कुछ ऐसे स्थानीय एवं क्षेत्रीय कारक भी होते हैं जो मॉनसून की वर्षा को प्रभावित करते हैं। ये क्षेत्रीय कारक हैं – पर्वत शृंखलाओं की उपस्थिति, निम्न दबाव क्षेत्र का बनना, स्थानीय दबाव परिस्थिति आदि।

अभी भी मॉनसून के बारे में नए-नए मॉडल लगातार पेश किए जा रहे हैं। मॉनसून का समय पर आना, अच्छी वर्षा होना, अच्छा मॉनसून, बुरा मॉनसून और मॉनसून को प्रभावित करने वाले कारक जैसी बहुत-सी और बातें हैं जिन पर अगले किसी लेख में चर्चा करेंगे।

सवालीराम

सवाल: क्या कारण है कि रेडियो सेट पर कुछ विशेष फ्रीक्वेंसियों पर (रेडियो चलाने के दौरान) रेडियो पर हाथ रखें तो उसकी आवाज़ तेज़ हो जाती है? यह ज़रूरी नहीं कि सेट पर हाथ का स्पर्श किया जाए, हाथ को पास लाने पर भी ऐसा होता है?

हरि नारायण त्रिपाठी, भीलवाड़ा, राजस्थान

अनुभव तो आपने भी किया होगा? और हो सकता है कि कभी जवाब की तलाश में भी निकले हों। तो फिर क्या, उठाइए कलम और लिख भेजिए अपने जवाब हमें इस पते पर – संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद – 461 001.

सही जवाबों को अगले अंक में प्रकाशित किया जाएगा।

इस स्तंभ का उद्देश्य है उलझन को नए ढंग से देखने की कोशिश करना, जो किताबी भाषा से अलग हो। साथ ही ज़रूरी है समझाने का वो तरीका ढूंढना जो समस्या को आम ज़िंदगी के अनुभवों से जोड़ सके। इसीलिए एक सवाल को देखने के कई पहलू हो सकते हैं और हर पहलू प्रकाशित हो सकता है। बशर्ते कि मुद्दे की तह तक पहुंचने की कोशिश सही हो।

बहुस्तरीय शिक्षण स्थितियों से उपजा एक प्रयोग

मुकेश मालवीय

चित्र: विप्लव शशि

कुल कक्षाएं पांच – एक से पांचवीं तक; और शिक्षक एक। ऊपर से सरकारी काम भी करना है। तो कैसे चले शिक्षा की बात। और अगर शिक्षक संवेदनशील हो, जो शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए जैसे सवाल पर सोचता हो तो मामला और भी दुविधाजनक। लेकिन कुछ तो तरीके फिर भी खोजे जा सकते हैं।

पिछले लगभग सात वर्षों से मेरी शाला एक शिक्षकीय शाला रही है। कक्षाएं पहली से पांचवीं तक, और बच्चे 100 से 150 के बीच। सारे इतर शैक्षणिक काम करते हुए मैं कुछ वक्त अपनी इन कक्षाओं को समझने और समझाने के लिए भी निकाल सका। इसलिए यह अनुभव एक व्यवस्था की देन है, मेरे शिक्षण की वकालत नहीं।

एक दृश्य

तीन कमरों में पांच कक्षाएं बैठती हैं। शुरू में हर कक्षा की एक अलग पंक्ति होती थी, परन्तु एक कमरे में बैठी दोनों कक्षाओं के बच्चे एक साथ एक ही काम करते थे; जैसे कि दूसरी के बच्चे अगर गिनती लिखते तो पहली के बच्चे भी लिखने लग जाते। चौथी के बच्चे अगर किताब पढ़ते तो तीसरी के बच्चे भी अपनी किताब खोलकर पढ़ते या पढ़ने का अभिनय करते।

खेलते समय ये बच्चे न तो कक्षा का बन्धन स्वीकार करते न उम्र का। धीरे-धीरे यह बात कक्षा में भी दिखने लगी। एक कमरे में बैठी दोनों कक्षाओं के बच्चे आपस में मिलकर बैठने लगे। मैंने न तो उन्हें अलग-अलग पंक्तियों में, कक्षावार बैठने को कहा था और न ही इस तरह मिलजुल कर। कुछ दिनों बाद मैंने एक सत्र में बार-बार इन कक्षाओं का बदलाव किया – कुछ समय पहली और तीसरी के बच्चे एक साथ बैठते तो कुछ समय बाद तीसरी और पांचवीं के बच्चे। यानी एक सत्र में हर कक्षा अन्य सभी कक्षाओं के साथ कुछ समय तक ज़रूर बैठ चुकी होती।

सीखने की प्रेरणा और परस्पर शिक्षण

इन वर्षों में मैंने अनुभव किया कि बच्चे जो कुछ भी सीख रहे हैं वह स्वयं उनकी कुछ जानने और करने की इच्छा के कारण है; और इस इच्छा को प्रेरित करते हैं वे बच्चे जो कुछ अधिक सीखे हुए हैं। कक्षा चौथी के बच्चे को किताब पढ़ते देख कक्षा दो के बच्चे का किताब पढ़ने का अभिनय उसे उतना ही आनन्द देता है, जितना किताब पढ़ने वाले को। अगर इस तरह की प्रेरणा न हो तो मुझे लगता है कि पढ़ना सीखना या कुछ भी सीखना-सिखाना

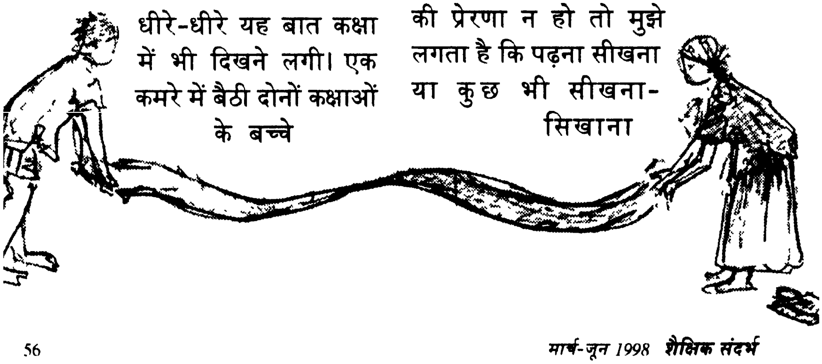

मुश्किल है। इस प्रेरणा और इच्छा शक्ति को बनाए रखने के लिए सीखने का एक माहौल एवं परिस्थिति उपलब्ध कराने का एक प्रयास मैंने भी किया।

नियंत्रण में ढील

शासन एवं शिक्षकीय नियंत्रण को बहुत कम करना: बच्चों की स्वतंत्रता मेरी पहली मजबूरी थी – एक साथ इतने बच्चों पर नियंत्रण रखने के साथ उन सरकारी कामों को करना संभव नहीं था जो मुझसे अपेक्षित थे। पर यह भी आवश्यक था कि इस स्वतंत्रता से अराजकता पैदा न हो। कुछ समय के अनुभवों के बाद यह लगा कि बच्चों के काम और ज़िम्मेदारी पहले से तय होनी चाहिए। अब मैं हर दिन बच्चों से क्या करवाना है यह तय करता। लेकिन उस काम के सही क्रियान्वयन के लिए मेरी उपस्थिति ज़रूरी बन जाती। इसी दौरान छोटे-छोटे समूहों में काम (गतिविधियां) करवाना बड़े बच्चों से मॉनिटरिंग करवाना आदि कई विकल्प उभरे परन्तु बच्चों की मुझ पर निर्भरता कम नहीं हुई। बच्चों की शिक्षक के प्रति निर्भरता को कम करने के बारे में मुझे फिर से सोचना पड़ा।

मुझे लगा कि बच्चों को क्या सीखना चाहिए यह काम मेरे द्वारा तय हो रहे थे तो स्वाभाविक है कि इसकी ज़िम्मेदारी भी मुझ पर थी कि वे सही सीखें। यह सही सिखाने की समझ के कारण मेरी क्रियाशीलता कक्षा में ज़्यादा थी। मैंने इस ज़िम्मेदारी को विस्थापित करने का सोचा। सीखने के

लिए बच्चों को ही ज़िम्मेदारी सौंप रहा था तो ज़ाहिर है कि मेरे अधिकार भी बच्चों को दिए जाने चाहिए थे।

सबसे पहले मैनें बच्चों को शाला संचालन का अधिकार दिया। शाला की सफाई, प्रार्थना, बैठने की व्यवस्था, छुट्टी एवं घंटी बच्चों की सामूहिक भागीदारी से सम्पन्न होती। ऐसा पहले भी होता था पर अब फर्क यह था कि जवाबदेही बच्चों की थी।

इसके साथ ही बच्चों के आपसी विवाद हल करने के लिए भी कक्षा ज़िम्मेदार थी। इसके लिए मुझ तक आने की आवश्यकता नहीं थी। हां, शुरुआत में कुछ दिन मैंने बच्चों के साथ मिलकर ऐसे मामले निपटाए थे, जिसमें गलती किसकी है यह ढूंढना, और फिर सामूहिक राय से सज़ा तय करना शामिल था।

मध्यान्ह भोजन को बनावाने की ज़िम्मेदारी, उसके लिए तेल गुड़ लाने, दलिया पिसवाने एवं हिसाब रखने की ज़िम्मेदारी भी बच्चों पर थी। हां, पर अधिकारियों को दिखाने के लिए मुझे अलग से हिसाब रखना पड़ता।

इसी दौरान शाला में परस्पर शिक्षण का एक माहौल बना। मैंने यह प्रयास किया कि अधिक जानने वाले बच्चे अन्य बच्चों को सिखाने और समझाने के लिए ज़िम्मेदार हों। जैसे कि पढ़ना जानने वाले हर बच्चे के साथ ऐसे दो-दो बच्चों का बंटवारा किया गया जो पढ़ना नहीं जानते थे। ये बच्चे उन्हें नकल लिखकर लाने को कहते उंगली रखकर पढ़ाते, शुद्ध-लेख लिखवाते, और मुझसे शिकायत भी करते अगर बच्चे काम करके नहीं लाते। इसी तरह जोड़ना सिखाने वाले, घटाना सिखाने वाले बच्चों के समूह बनाए गए। कक्षा के हर बच्चे को जोड़ना या घटाना सिखाने की ज़िम्मेदारी इन टीमों को दी गई। साथ ही टीम एवं उनके दायित्व बदलते रहने की प्रक्रिया भी चलती रहती।

स्कूल में बहुत सारी शैक्षणिक सहायक सामग्री बच्चों के बीच उपलब्ध थी। जैसे पुस्तकालय की किताबें, संख्या कार्ड, शब्द कार्ड, चित्र कार्ड, शैक्षणिक चार्ट, हेन्डलेन्स, दर्पण आदि। इनके उपयोग एवं रखरखाव की ज़िम्मेदारी भी बच्चों को दी गई।

यहां मैं यह दावा नहीं करता कि इस सब से सीखना-सिखाना बड़ी तेज़ी से हुआ, परन्तु परस्पर सहयोग एवं शिक्षण की संस्कृति शाला में ज़रूर पनपी। यह मेरे लिए काफी उत्साहजनक एवं सर्वथा नवीन थी।

शिक्षक-सा कोई स्रोत

कुछ समय बाद मुझे अनुभव हुआ कि बच्चों के पास जितना और जो कुछ है वह तो आपस में बंट रहा है, कुछ थोड़ा इधर-उधर से भी शाला में

आ रहा था। उन्हें थोड़ी बहुत मेरी मदद भी मिल रही थी। परन्तु इसके अलावा शिक्षण हासिल करने का कोई और स्रोत भी होना चहिए, जो हर बच्चे के पास एक शिक्षक की तरह उपलब्ध हो।

हर बच्चे के पास एक शिक्षक का होना एक अन्य मायने में ज़रूरी है। मुझे यह विकल्प पाठ्यपुस्तकों में नज़र आता है। मगर एक तो जिस प्रचलित तरीकों से बच्चों को पढ़ना सिखाया जाता रहा है उसमें ये पुस्तकें मददगार (शिक्षक) नहीं बन पाईं दूसरा पाठ्यपुस्तकों को शिक्षक के विकल्प के

रूप में बनाया ही नहीं गया।

मैं जिस शाला में पढ़ा रहा हूं वहां 'एकलव्य' संस्था की 'खुशी-खुशी' किताबें चलती हैं। ये किताबें अन्य प्रचलित पाठ्यपुस्तकों से भिन्न हैं (मेरी यह समझ इन्हीं किताबों से बनी।)

बच्चों द्वारा इन किताबों को पढ़ने और समझने के लिए शिक्षक की ज़रूरत को कम से कम किया जा सकता है – अगर पढ़ना सिखाने की कुछ बुनियादी प्रक्रियाओं को बदला जाए तो।

पहला तो यह कि जिस वर्णमाला पद्धति से बच्चे पढ़ना सीखते हैं उससे काफी लम्बे समय तक (करीब पांचवीं तक) लिखी हुई बात को अर्थों के साथ नहीं पढ़ पाते। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि लिखा हुआ वे जो पढ़ रहे हैं वह उनसे या उनके लिए ही कहा जा रहा है। चलिए इस पहलू को और थोड़ा समझने के लिए कुछ उदाहरण देखते हैं। मैंने तीसरी के उन बच्चों से कुछ सवाल जवाब किए जो पढ़ना जानते थे।

1. मैंने मौखिक रूप से बच्चों को बताया – 'मोहन को बाज़ार में एक पेन मिला।'

फिर उनसे प्रश्न किया, 'मोहन को पेन कहां मिला?'

बच्चों का मौखिक उत्तर: 'बाज़ार में।'

2. मैंने बोर्ड पर लिखा : 'आशा और बीजू बाज़ार गए थे।'

प्रश्न: 'आशा और बीजू कहां गए थे?'

फिर बच्चों से कहा कि बोर्ड पर जो लिखा है उसे पढ़ो और प्रश्न का उत्तर दो।

बच्चों ने (ज़्यादातर ने) दोनों लाइनें वैसी ही उतार दी।

मैंने पहली लाईन को ज़ोर से पढ़ा और मिटा दिया और फिर कहा दूसरी लाइन पढ़ो और जवाब लिखो।

कुछ बच्चों ने लिखा: 'आशा और बीजू कहां गए थे।'

कुछ ने लिखा: 'आशा और बीजू कहां गए थे। बाज़ार गए थे।'

कुछ ने लिखा: 'बाज़ार गए थे।'

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मेरी समझ में आई कि बच्चे काफी लम्बे समय तक लिखी हुई भाषा को अलग और बोलने वाली भाषा को अलग मानते हैं। उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता कि जो बोला जाता है वही लिखा भी जाता है और इस अविश्वास को बनाने का काम भी पाठ्यपुस्तकें ही करती हैं। क्योंकि पढ़ना सीखते समय जिस लिखित भाषा से उसका सामना होता है, उसमें उसकी बोलचाल की भाषा के अंश काफी कम होते हैं।

पाठ्यपुस्तकों को बच्चों के समझने की दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए ज़रूरी था कि बच्चे सार्थक सन्दर्भों से पढ़ना सीखें। दूसरा अपनी बात

लिखकर अभिव्यक्त कर सकें और लिखी हुई बात को अपनी बात समझ सकें।

इसके लिए मेरा पहला प्रयास तो यह था कि वर्णमाला रटने को बढ़ावा नहीं दिया गया। इसकी जगह छोटी कविताओं को कार्डशीट पर लिखकर कक्षा में टांगा गया। इन कविताओं को बच्चों ने जल्दी ही याद कर लिया। इन कविताओं में लाइनों को पहचानना, शब्दों को पहचानना जैसी गतिविधियां हुई। किसी शब्द की पहचान होने के बाद उसके पहले या बाद में कौन-सा शब्द आया है इसे पहचानना। जैसे अगर बोर्ड पर लिखा हो

"चुपके-चुपके आती नींद"

इसे एक-दो बार मैंने पढ़ के बता दिया। इसमें नींद चूंकि अतिंम शब्द है इसलिए इसे पहचानना मुश्किल नहीं होता। अब अगर पूछा जाए कि नींद के पहले कौन-सा शब्द लिखा है – इसके लिए पहले तो बच्चा उस शब्द पर उंगली रखे जो नींद के पहले लिखा है; और फिर सोच कर बताए कि यह कौन-सा शब्द है – बच्चे मन में यह लाईन दुहराते और इस शब्द की पहचान करते।

इसी तरह कई अन्य लिखित संदर्भ लेकर, शब्द कार्डों की मदद से, शब्दों की तुकबन्दी करके, किसी अक्षर विशेष से प्रारम्भ होने वाले शब्दों को इकट्ठा करके, शब्दों को ध्वनियों में तोड़कर पढ़ना सीखने-सिखाने की शुरुआत हुई।

इस पूरी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण यह था कि बच्चों की अपनी समझ का

इस तरह पढ़ने में पूरा इस्तेमाल हो रहा था। सोचना, तय करना, किसी नतीजे पर पहुंचना आदि – उस समय बच्चों का उत्साह देखते ही बनता।

मेरा दूसरा प्रयास उन बच्चों के साथ था जो पढ़ने की कोशिश कर रहे थे या पढ़ तो लेते थे, पर पढ़ी हुई सामग्री से अर्थ नहीं निकाल पाते थे। मुझे लगा कि ऐसे बच्चे अगर उन बातों को लिखित रूप में अभिव्यक्त करें जो वह दोस्तों से या माता पिता से करते हैं, तो उनका लिखने और बोलने की भाषा से संबंध बनाया जा सकता है। इसके लिए मैंने कुछ इस तरह के कदम उठाए:

1. **डेली डायरी:** कक्षा तीसरी से पांचवीं तक के हर बच्चे को अपने दैनिक क्रियाकलाप की एक डायरी लिखना होती। स्कूल में उन्होंने क्या-क्या किया; स्कूल से घर जाने के बाद और फिर स्कूल आने के बीच उन्होंने जो कुछ भी किया, वे डायरी में लिखकर लाते। कुछ दिनों बाद इस डायरी में काम के अलावा आस-पास की खबरों को भी शामिल किया गया – जैसे कि उस दिन मोहल्ले में क्या हुआ, किसके यहां मेहमान आए, किसका झगड़ा हुआ आदि, आदि।

   शुरू की डायरियां देखें तो वो अधूरे वाक्यों, मात्राओं की गलती एवं एक जैसे वाक्य में लिखी गई थीं। जैसे कि मैं खेत गया, मैं नदी गया, मैं रोटी खाया, आदि। कुछ डायरियों में जो लिखा था उसे पढ़ना मुश्किल था, परन्तु पेज भरा हुआ था। कुछ डायरियों में कुछ शब्द पढ़ने में आते थे, तो एक अनुमान लगाया जा सकता था कि क्या कहने की कोशिश की गई है।

कुछ दिनों तक इन डायरियों को देखने के बाद मैंने बच्चों से कहा कि अब अपनी-अपनी डायरियों को पढ़के भी सुनाना होगा। डायरी पढ़वाने से मुझे दो-तीन बातें समझ में आईं। एक तो जिनकी डायरी पढ़ने में नहीं आ रही थी, वे बच्चे उसे खुद अन्य पढ़ने वाले बच्चों की तरह ही पढ़ रहे थे।

दूसरा, मात्राओं की गलती वाले शब्द कुछ बच्चे तो सही पढ़ते, कुछ उस गलती को पढ़ते, सुधारते और फिर पढ़ते – जैसे कि 'मैंने अगार सिलगाया' को पहले ऐसे ही पढ़ा फिर तुरन्त बाद 'मैंने अंगार सिलगाया' पढ़ा।

तीसरी बात जो मैंने महसूस की कि बच्चे अपने लिखे हुए को पढ़ते समय अटपटापन महसूस करते थे। उन्हें यह अहसास था कि जैसा वो बोलते हैं लिखा हुआ वैसा नहीं है बल्कि काफी रूखा-सूखा है। इस लेखन में शब्द तो वही थे जो बच्चे बोलते हैं

परन्तु उनका लहज़ा, बोलचाल का तरीका आदि कैसे लिखा जाता?

2. **स्वतंत्र लेखन:** किसी भी ऐसे विषय पर बच्चों को एक पेज लिखने को कहा जाता जिससे वो परिचित हो – जैसे त्योहार, बाज़ार, मध्यान्ह भोजन, चुनाव, सरपंच, पल्सपोलियो, गर्मी की छुट्टी आदि। इन विषयों पर बच्चे जो भी लिखते उसे पढ़ा जाता। फिर यह चर्चा होती कि इस विषय पर और क्या-क्या लिखा जा सकता था। यह चर्चा आगे के विषयों के लेखन के लिए महत्वपूर्ण होती। फिर बच्चे उस विषय पर सारी संभावनाओं पर सोच कर लिखते।

3. **चित्रों पर लेखन:** बच्चों को अखबार में छपे या पुस्तकालय की किताबों के चित्र दिए जाते। पहले इन चित्रों पर बातचीत होती। चित्रों पर बातचीत में कल्पनाओं की असीम उड़ान उड़ी जा सकती है। कल्पनाओं को लेखन में उतारने के लिए चित्र उपयोगी माध्यम बन सके।

4. **अखबार काल:** चूंकि बच्चों की डाय-रियों में मोहल्ले की खबरें बहुत आने लगी थीं तो शाला का अखबार निकालने का विचार आया। इन सारी खबरों को अलग-अलग पेज पर लिखा जाता। इसे एक बड़ी कार्ड शीट पर चिपका कर स्कूल में लगा दिया जाता। ये खबरें पढ़ना सीखने में सहायक बन रही थीं।

कविताओं के लिए चित्र बनाना: मैंने बाल पुस्तकालय की कविताओं की किताबों से कुछ कविताओं को पर उतारा। इन कविताओं को बच्चों को पढ़कर सुनाया। जो बच्चे पढ़ सकते थे उन्होंने भी इन कविताओं को पढ़ा। इसके बाद बच्चों को टोलियों में बांट दिया। हर टोली को कविता की एक कार्डशीट दे दी। बच्चों को इस कविता के आधार पर चित्र बनाने थे। शुरूआत में बच्चों से

बातचीत हुई कि कविता में जो कुछ कहा गया है उसको ही चित्र में बनाया जा सकता है। छोटी कक्षाओं के बच्चों ने भी इस गतिविधि में भाग लिया।

लिखित निर्देश देना

यह गतिविधि मौखिक निर्देश से प्रारम्भ हुई। कोई एक विद्यार्थी किसी छात्र विशेष के लिए या सभी के लिए निर्देश देता। निर्देश कुछ ऐसे होते कि ज़ोर-ज़ोर से हंसो या बाहर से नीम की पत्ती लाओ। इसी तरह हर छात्र को कोई न कोई निर्देश देना पड़ता। बाकी उसका पालन करते। इसी प्रक्रिया को बाद में 'लिखित निर्देश देने' में बदल दिया गया। निर्देश को श्यामपट पर या पर्ची पर लिखा जाता।और इस निर्देश का पालन मौखिक या लिखित रूप से करना पड़ता। इन निर्देशों की भाषा धीरे-धीरे बदलती गई। 'अपना नाम लिखकर बताओ' जैसे निर्देशों से लेकर 'अपनी किताब का सुखनराम की मौसी वाला पाठ कौन-से पेज पर है।' इस तरह के निर्देशों को समझने और उनके अनुसार काम करने से यह विश्वास बनाने में मदद मिली कि जो लिखा हुआ है वह हमसे कुछ कहता है।

पैराग्राफ पर सवाल जवाब: बच्चों को कुछ लिखित पैराग्राफ दिए जाते। साथ में कुछ प्रश्न होते जिनका जवाब उस लिखित अंश में होता। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए पैराग्राफ को ध्यान से पढ़ना – अर्थ के साथ – ज़रूरी होता। इस गतिविधि की मदद से दो महत्वपूर्ण मुद्दों पर बच्चों की समझ बनाने का प्रयास हुआ। पहला तो यह कि जो प्रश्न पूछा गया उसका क्या मतलब है। पैराग्राफ को पढ़ने के बाद उसका जवाब क्या होगा। इसके लिए पहले बोल-बोलकर पैराग्राफ पढ़ना, प्रश्न मौखिक पूछना, उत्तर मौखिक देना जैसी गतिविधियां हुईं। फिर लिखित जवाब देने पर ज़ोर दिया गया। इन लिखित उत्तरों पर भी चर्चा होती थी कि जो जवाब लिखे गए क्या वही सही जवाब हैं या उनके अलावा और कुछ भी लिखा जा सकता था। मुझे लगता है किसी भी बात पर समझ बनाने के लिए उस पर

सही चर्चा करना बहुत उपयोगी होता है।

बालपुस्तकालय की किताबें: गांव में जिस तरह आज भी आधुनिक सुविधाएं नहीं पहुंच पाती, उसी तरह आधुनिक शब्दावली का भी वहां काफी अभाव होता है। एक सीमित शब्दभण्डार के साथ काम करते हुए लगा कि इस शब्द-भण्डार में वृद्धि के विकल्प कहीं न कहीं ढूढने होंगे। टी. वी., रेडियो, समाचार पत्र, आदि गांव में बहुत कम हैं। गांव की मुख्य भाषा गोंडी होने की वजह से हिन्दी का प्रयोग भी बहुत कम है। जब लोग शहरी बच्चों से इन बच्चों की तुलना करते हैं तब क्या वे भाषा के इस परिवेश पर सोचते हैं। शायद नहीं?

मैंने बाल-पुस्तकालय के सही क्रियान्वयन पर ध्यान दिया। हर बच्चे को स्कूल में, घर में ये किताबें ले जाने दी जाती। इन्हें पढ़कर, किताब पर एक पेज लिखकर लाना होता कि किताब कैसी लगी? किताब में किसके बारे में बात की गई है? किताब के चित्र कैसे हैं? किताब की किस बात पर मज़ा आया? इस तरह की एक रिपोर्ट उस किताब पर लिखी जाती। साथ-साथ मैं पाठ्यपुस्तकों के प्रति भी बच्चों का लगाव बढ़ाने में कुछ-कुछ सफल हुआ। पाठ्यपुस्तकों का काफी हिस्सा बच्चे स्वयं एवं आपसी चर्चा से निपटाते। किताब की हर लाईन समझने के लिए शिक्षक की ज़रूरत कम हुई। शायद शुरू में मैं इसी उद्देश्य को लेकर चला था।

यहां मैं फिर यही कहना चाहूंगा कि आप यह न माने कि मैं बहुत सफल हूं। ऐसा कहा जाता है कि सफलता के लिए चाहिए एक अलग तरह के बच्चे जैसे हमने अभी तक देखे न हो। पर ये बच्चे अन्य बच्चों की तरह ही हैं। हर बच्चे में विविधता है। और दावे से मैं इनके बारे में एक लाईन भी नहीं कह सकता।

मुकेश मालवीयः बैतूल ज़िले की शाहपुर तहसील के एक गांव पावरझंडा की प्राथमिक शाला में शिक्षक हैं।

चद्रमा - 1

अरविंद गुप्ते

चंदामामा दूर के, पुए पकाए बूर के
आप खाएं थाली में, मुन्ने को दें प्याली में

पिछले कई दशकों से यह सुंदर गीत बड़ों और बच्चों, दोनों का मन मोहता आया है। लेकिन क्या वास्तव में चंदामामा हमसे दूर हैं? यदि हैं, तो कितनी दूर? आइए, इस तालिका पर नज़र डालें।

पृथ्वी से विभिन्न आकाशीय पिंडों की दूरी (किलोमीटर में)

1. हमारे सबसे पास का तारा और सौर मंडल का प्रमुख
   सूर्य 14 करोड़ 96 लाख
2. बुध – 9 करोड़ 17 लाख
3. शुक्र – 4 करोड़ 14 लाख
4. मंगल – 7 करोड़ 83 लाख
5. बृहस्पति – 62 करोड़ 87 लाख
6. शनि – 1 अरब 27 करोड़ 74 लाख
7. युरेनस – 4 अरब 34 करोड़ 74 लाख
8. प्लूटो – 5 अरब 75 करोड़ 4 लाख
9. पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चंद्रमा – 3 लाख 85 हज़ार

अरविंद गुप्ते: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध; इंदौर में रहते हैं। पूर्व में वे प्राणीशास्त्र के प्राध्यापक रह चुके हैं।

स्पष्ट है कि अंतरिक्ष की दूरियों में 3-4 लाख किलोमीटर कोई दूरी ही नहीं है। इस दृष्टि से देखा जाए तो चंद्रमा हमारा पड़ोसी नहीं, परिवार का सदस्य है। यही कारण है कि पृथ्वी के इस इकलौते उपग्रह पर मानव कई प्रकार से निर्भर है। कवि और लेखक तो इसके बारे में लिखते ही रहते हैं। यही नहीं हमारी समय की गणना (हिंदू और मुस्लिम पंचांग) भी इसी पर आधारित हैं।

समुद्र में उठने वाला ज्वार चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण ही होता है। यहां तक कि हमने सप्ताह के एक दिन का नामकरण चंद्रमा के नाम पर किया है। चंद्रमा एकमात्र ऐसा आकाशीय पिंड है जिस पर मानव अपने चरणों की छाप छोड़ चुका है।

इतना सब होते हुए भी हमारे परिवार के इस सदस्य के बारे में हम कितनी जानकारी रखते हैं? आइए, एक परीक्षण कर के देखें। नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर हमें लिख कर भेजिए। इन प्रश्नों के जवाब अगले अंक में प्रकाशित किए जाएंगे। एक बात और। यदि आप चंद्रमा के बारे में अन्य कोई जानकारी देना चाहें, सवाल पूछना चाहें, तो भी हमें लिखिए।

1. अमावस्या के दिन चंद्रमा बिलकुल दिखाई नहीं देता है। वह कहां चला जाता है?

2. चित्र-1 में एक गलती है। बताइए चित्रकार ने क्या गलती की है।

चित्र:1

3. चित्र-2 में क्या गलती है?

चित्र:2

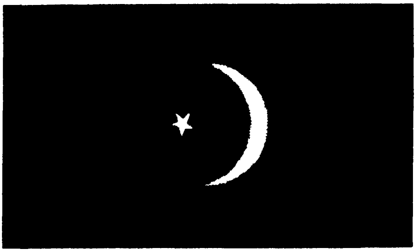

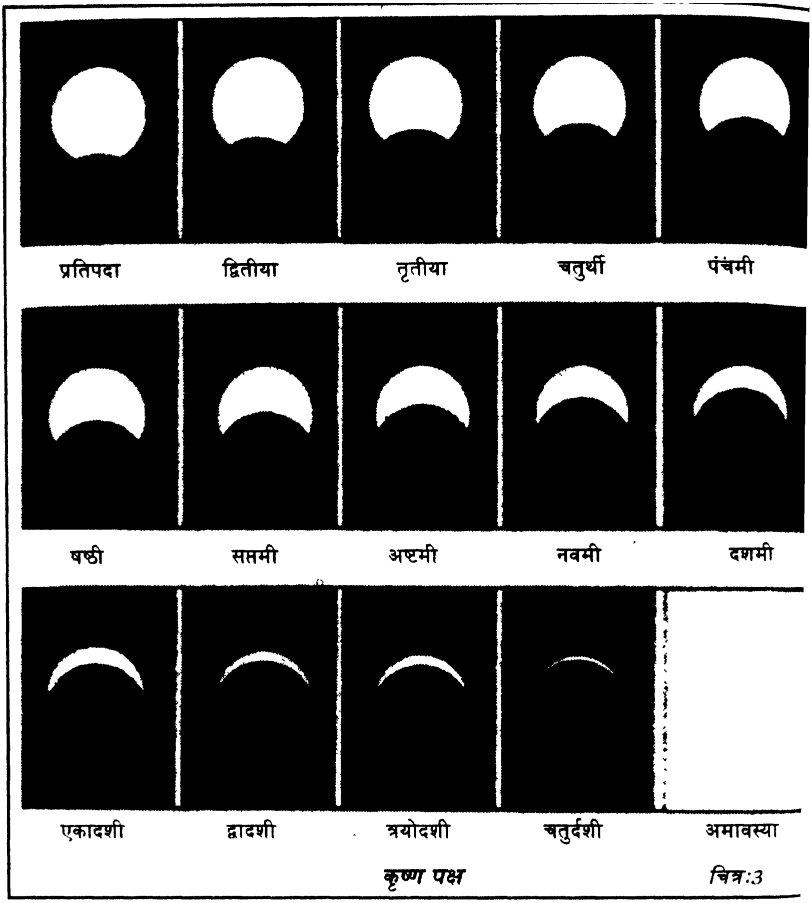

कृष्ण पक्ष

चित्र:3

4. चित्र-3 एक पाठ्यपुस्तक से लिया गया है। इसमें कई त्रुटियां हैं। इन त्रुटियों को पहचानिए।

5. भूमध्य रेखा पर चंद्रमा की कला ऐसी दिखाई पड़ती है जैसी चित्र-4 में दिखाई गई है।

   – यह भारत में कैसी दिखाई देती है? क्यों?

   – ध्रुवों पर यह कैसी दिखाई देगी? क्यों?

आपके जवाब हमें आपको संदर्भ मिलने के एक महीने के भीतर मिल जाने चाहिए, इस पते पर: संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461001

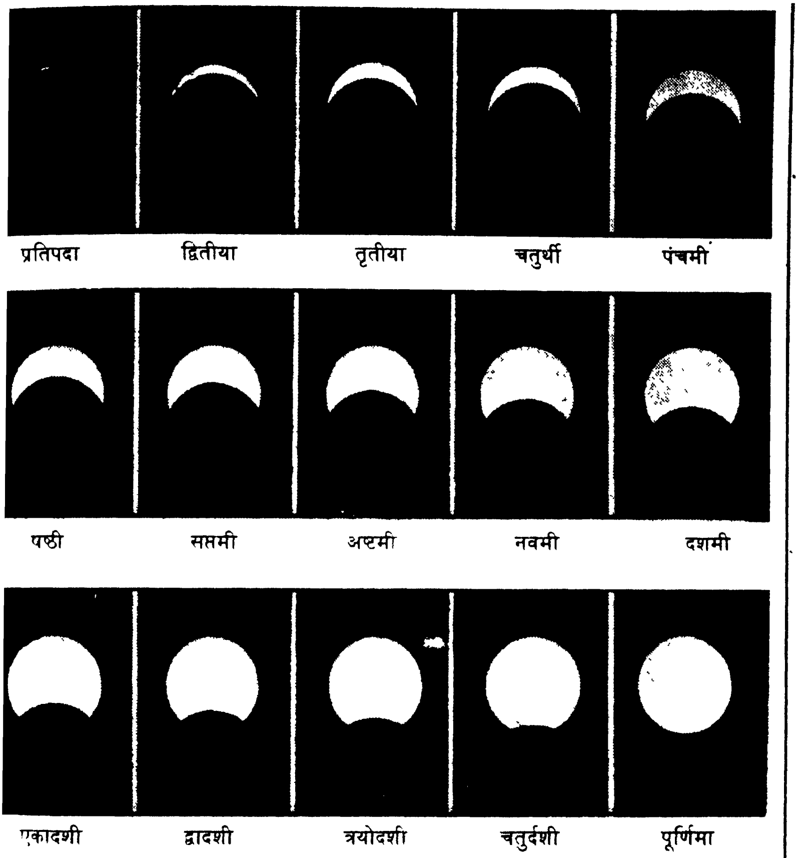
प्रतिपदा
द्वितीया
तृतीया
चतुर्थी
पंचमी
षष्ठी
सप्तमी
अष्टमी
नवमी
दशमी
एकादशी
द्वादशी
त्रयोदशी
चतुर्दशी
पूर्णिमा

शुक्ल पक्ष

चित्र 1

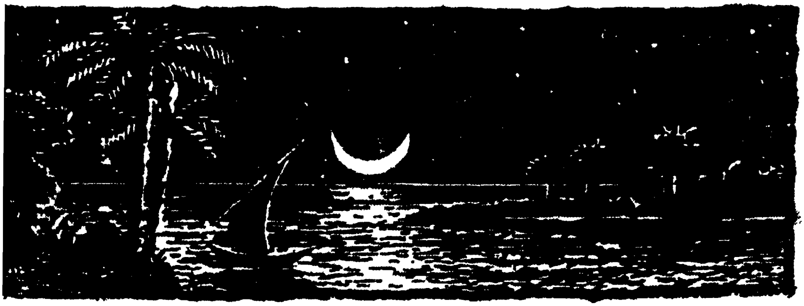

बचपन से लगातार वे अपनी मेधा का प्रदर्शन करते रहे ताकि बेहतर विद्यार्थी को मिलने वाला वज़ीफा जीत सकें और अपनी पढ़ाई जारी रख सकें। क्योंकि पिता की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। 1920 में उन्होंने अपना प्रसिद्ध पर्चा लिखा। उनके इस काम के बारे में एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने उस समय कहा, "खगोलभौतिकी को साहा के काम ने काफी तेज़ गति प्रदान की। बाद में इस क्षेत्र में हुए काम पर उनके शोध का काफी प्रभाव रहा।"

तारों का वर्णक्रम और मेघनाथ साहा

वैज्ञानिक तार्किकता के ज़रिए बौद्धिक मुक्ति, और इस प्रकार समाज को मिलने वाले लाभ लगभग उतनी ही महत्वपूर्ण चीज़ हैं जितने कि शोध द्वारा मिलने वाले भौतिक लाभ। सत्रहवीं सदी से यह बात पाश्चात्य चिंतन के केंद्र में रही है। कई विद्वानों के अनुसंधानों से भी यह बात सामने आई है कि अन्य समाजों में भी विज्ञान के विकास की जड़ें सहनशीलता की सांस्कृतिक परंपरा में ही रही हैं। यदि यह बात सही है, तो अपनी सांस्कृतिक परंपराओं से तालमेल बिठाए बगैर किसी भी समाज में न तो आधुनिक विज्ञान फल-फूल सकता है और न ही इससे मिलने वाला भौतिक लाभ।

इसी सरोकार के साथ छह भारतीय वैज्ञानिकों, जगदीश चंद्र बोस, प्रफुल्ल चंद्र रॉय, चंद्रशेखर वेंकट रमन, सत्येंद्र नाथ बोस, मेघनाद साहा और होमी जहांगीर भाभा ने भी विज्ञान की सार्वभौमिकता और अपने समाज के लिए इसकी अहमियत की हिमायत

की। सन् 1894 में लंदन की रॉयल सोसायटी की तर्ज पर एशियाटिक सोसायटी ऑफ साइंस की कलकत्ता में स्थापना हुई।

शुरू में बंगाल प्रेसिडेंसी के प्रशासनिक केंद्र के रूप में और आगे चलकर (1774-1921) ब्रिटिश भारत की राजधानी के रूप में, कलकत्ता में हिंदुस्तानियों को आधुनिक विज्ञान से संपर्क का मौका मिला। दरअसल 1915 से 1921 के बीच जगदीश चंद्र बोस, प्रफुल्ल चंद्र रॉय, सी. वी. रमन, सत्येंद्रनाथ बोस और मेघनाद साहा की बदौलत ही कुछ सालों के लिए कलकत्ता, यूरोप के बाहर वैज्ञानिक क्रियाकलापों का सबसे बड़ा केंद्र बना रहा। इन पांचों में से मेघनाद साहा में सबसे ज़्यादा जोश था – शोध कार्यों की दृष्टि से भी और राजनैतिक मामलों में भी। राजनैतिक रूप से वे इन वैज्ञानिकों में सबसे अधिक सक्रिय थे।

शुरुआती दौर

एक दुकानदार के पांचवे बच्चे के रूप में उनका जन्म ढाका के पास के एक गांव शेओराताली में 6 अक्टूबर 1893 में हुआ। घर की आर्थिक हालत इतनी खराब थी कि पिता मेघनाथ की स्कूल की पढ़ाई का खर्चा तक उठाने में असमर्थ थे। अपनी पढ़ाई के हर दौर – स्कूल, कॉलेज एवं यूनिवर्सिटी में मेघनाथ को प्रतिभावान विद्यार्थियों को दिया जाने वाला वज़ीफा जीतना पड़ा ताकि वो पढ़ाई का खर्चा निकाल सके। उन्होंने अपनी स्नातक डिग्री प्रेसिडेंसी कॉलेज, कलकत्ता से प्राप्त की। यहां उनके सहपाठी सत्येंद्रनाथ बोस, प्रफुल्ल चंद्र रॉय, राजेंद्र प्रसाद और सुभाष चंद्र बोस जैसे लोग थे। सन् 1916 में मेघनाथ साहा यूनिवर्सिटी कॉलेज, कलकत्ता में व्याख्याता नियुक्त हुए। उनके शुरुआती शोध पर्चों के विषय विद्युतचुंबकीय सिद्धांत, विकिरण दबाव और ब्रह्मांडीय स्पेक्ट्रम के सिद्धांत आदि थे। इन्हीं के आधार पर उन्हें 1919 में डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि मिली। 1920 में साहा एक साल के अध्ययन प्रवास पर इंग्लैंड और जर्मनी गए। वापस आने के बाद 1921 में वे कलकत्ता के यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस में 'खेड़ा प्राध्यापक' बन गए। 1923 में उन्होंने यह पद छोड़ दिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक बन गए।

इलाहबाद में अपने 15 वर्ष के कार्यकाल के दौरान उन्होंने अपना ध्यान सांख्यिकीय यांत्रिकी (स्टेटिस्टिकल मेकेनिक्स), आणविक और परमाण्विक स्पेक्ट्रोस्कोपी, ऊंचे ताप पर अणुओं के विघटन, और ऊपरी वायुमंडल के विज्ञान के अध्यापन व शोध पर लगाया।

साहा एक बार फिर 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'पालित प्राध्यापक' के रूप में कलकत्ता वापस आए। इसी बीच 1927 में उन्हें रॉयल सोसायटी का सदस्य मनोनीत किया गया।

वर्णक्रम में छुपा रहस्य

साहा का सबसे मौलिक वैज्ञानिक योगदान था ऊंचे तापक्रम पर आयनीकरण का सिद्धांत और इस सिद्धांत को ब्रह्मांडीय वायुमंडल एवं स्पेक्ट्रा वर्गीकरण के क्षेत्र में लागू करना। उन्होंने अपना यह काम 1919 में कलकत्ता में शुरू किया था और इसे यूरोप प्रवास के दौरान विकसित किया। 1920 में उन्होंने अपने पर्चे को प्रकाशित किया, तब वे 27 बरस के थे।

उनके काम का महत्व आंकने के लिए यह देखना ज़रूरी है कि उस समय खगोलशास्त्र में क्या कुछ काम चल रहा था। इसका उदाहरण हमें अमेरिका के वैज्ञानिक हेनरी मॉरिस रसेल के काम में मिलता है। अन्य कई वैज्ञानिकों के साथ रसेल तारों के वर्णक्रम में मौजूद रंगों के आधार पर उनका वर्गीकरण करने की कोशिश में जुटे थे। यह वह ज़माना था जब अमेरिका में काफी शक्तिशाली दूरबीनें बनाई जा चुकी थीं और अवलोकन का खगोलशास्त्र अपने चरम पर था। बहरहाल, रसेल इस लगभग अंतहीन वर्गीकरण के काम पर सवाल उठा रहे थे जिसमें कोई पर्याप्त सैद्धांतिक आधार न हो।

सदियों पहले न्यूटन के नियमों से आकाशीय पिंडों की गतियों को समझना संभव हुआ था। रसेल का सवाल था कि प्लांक, बोहर और आइंस्टाइन के विकिरण एवं क्वांटम यांत्रिकी संबंधी नियमों से तारों की रचना को समझने में मदद क्यों न ली जाए?

रसेल ने 1917 में लिखा, "मुझे ऐसा लगता है कि आज का खगोलशास्त्र एक फौज की तरह है जो धड़ों में आगे बढ़ रहा है – एक रोज़मर्रा के अवलोकन की दिशा में और दूसरा सिद्धांतों की खोज की दिशा में। यदि इन दोनों में लगातार संपर्क न रहा तो ये बहुत दूर नहीं पहुंचेंगे।"

इस सारे शोरगुल के बावजूद रसेल के कार्य से प्लांक, बोहर और आइंस्टाइन के काम को तारों की बनावट और विकास पर लागू करने में मदद नहीं मिल पाई। इस समय तक तारों के वर्णक्रम के विश्लेषण के आधार पर खगोलशास्त्री उनमें मौजूद रासायनिक तत्वों की पहचान करने लगे थे। वे वर्णक्रमों के आधार पर तारों का वर्गीकरण भी कर लेते थे – परंतु मात्र गुणात्मक तौर पर। परंतु इन वर्णक्रमों के पीछे छिपा भौतिकशास्त्र

बहुत कम समझा जा सका था। रसेल और अन्य वैज्ञानिकों ने माना था कि वर्णक्रम में विभिन्नता का प्रमुख कारण आकाशीय पिंडों के तापमान में अंतर का होना है। परंतु कई और लोगों का इस बात से मतभेद था। अभी तक इस बात की कोई भौतिकशास्त्री व्याख्या मौजूद नहीं थी कि तापमान से वर्णक्रम में अंतर क्यों आता है।

साहा का पर्चा : सुलझती गुत्थी

और तब अक्टूबर 1920 में घटी एक घटना ने जैसे सब कुछ बदल दिया। उस माह की फिलॉसॉफिकल मेग्ज़ीन में एक अनजाने वैज्ञानिक एम. एन. साहा का एक लेख छपा था। कलकत्ता के इस भारतीय वैज्ञानिक ने अपने पर्चे में किसी तत्व के आयनीकरण ऊर्जा और आयनीकरण के स्तर को आसपास के वातावरण के तापक्रम और दबाव से जोड़ा था।

किसी भी परमाणु से एक इलेक्ट्रॉन को अलग करने में लगी ऊर्जा को आयनीकरण ऊर्जा कहते हैं। जब पदार्थ को गर्मी दी जाती है, तो उसका सामान्य प्रभाव यह होता है कि पदार्थ के घटकों की कड़ियां ढीली पड़ जाती हैं। जैसे ठोस पदार्थ को गर्म करने से वह द्रव में बदल जाता है और द्रव को गर्म करने से वह वाष्प में बदल जाता है। वाष्प को और गर्म करने पर उसके अणु विखंडित हो जाते हैं और परमाणु घटक प्राप्त होते हैं। इसी तर्क को और आगे बढ़ाएं तो और गर्मी मिलने पर इलेक्ट्रॉन (जो कि परमाणु का एक घटक है) परमाणु से अलग हो जाता है। बाकी बचे परमाणु को आयनीकृत परमाणु कहते हैं। साहा ने इस तरह से अणुओं से बनी गरम गैस का सैद्धांतिक विश्लेषण किया जिसमें परमाणु – सामान्य व आयनीकृत – और इलेक्ट्रॉन मौजूद हों। इस विश्लेषण से प्राप्त समीकरण के आधार पर वे यह गणना कर सके कि तापमान और दबाव का किसी गैस में विघटित घटकों की सांद्रता पर क्या व कितना प्रभाव पड़ेगा।

रसेल ने तत्काल पहचाना कि यही तो आकाशीय वर्णक्रम की सैद्धांतिक कुंजी है। साहा ने अक्टूबर पर्चे के तुरंत बाद दो और पर्चे प्रकाशित किए। इन पर्चों का इतना प्रभाव हुआ कि रसेल ने अपने सहयोगी एडम्स को लिखा, "मुझे विश्वास है कि कुछ ही सालों में हम वर्णक्रम संबंधी जानकारी के आधार पर आयनीकरण ऊर्जा वगैरह के ज्ञान के उपयोग से, आकाशीय पिंडों का तापमान पता लगा लेंगे।" इसके विपरीत साहा की शिकायत थी, "हमारे पास प्रायोगिक आंकड़े लगभग न के बराबर हैं।" रसेल ने भी वर्णक्रम व आयनीकरण ऊर्जा के उच्च कोटि के आंकड़ों की कमी को महसूस किया। परंतु उन्हें यह भी पता

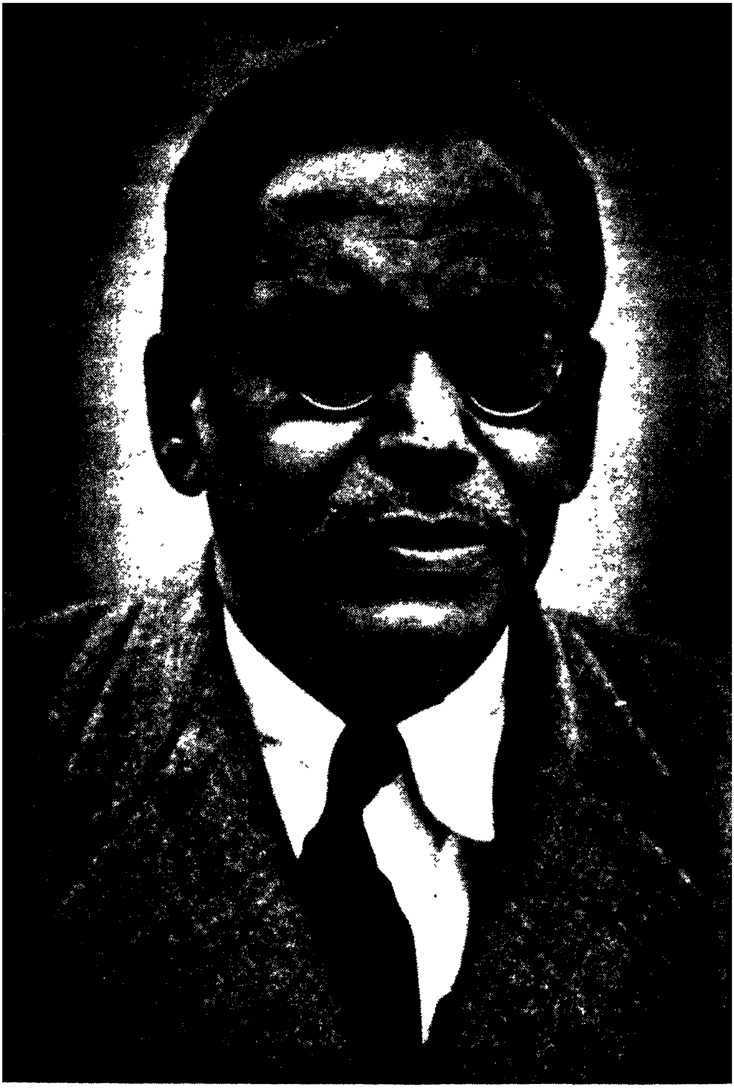

मेघनाथ साहा

था कि ये आंकड़े कहां से मिल सकते हैं – माउंट विल्सन में जॉर्ज हेल और उनके सहकर्मियों के पास। साहा के ऐसे कोई संपर्क नहीं थे। अगली गर्मियों में रसेल खुद माउंट विल्सन पहुंचे ताकि साहा के सिद्धांतों को तारों पर लागू करके देख सकें। माउंट विल्सन में व्याख्यान देते हुए उन्होंने बताया कि साहा के सिद्धांत में, "अब खगोल-शास्त्र, भौतिकी और रसायनशास्त्र में विकिरण के अवशोषण और उत्सर्जन के परमाण्विक मॉडल मौजूद हैं।" माउंट विल्सन में उपलब्ध सूरज के चित्रों के आधार पर रसेल ने बताया कि साहा की कुछ भविष्यवाणियां सही हैं और मोटे तौर पर उनके सिद्धांत के आधार पर सौर वायुमंडल में उपस्थित तत्वों के व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है।

भावी संभावनाओं को पहचानने में रसेल अकेले नहीं थे। स्वयं साहा ने भी अपने काम के लिए सहायता मांगी थी और जा ि हेल को लिखा कि उन्हें वह सामग्री उपलब्ध कराई जाए जो रसेल को दी गई थी। रसेल ने साहा के पत्र के जवाब में माउंट विल्सन में प्रस्तावित काम का ब्यौरा देते हुए साहा को आश्वस्त किया कि उन्हीं के सिद्धांत के अनुरूप काम होगा। अलबत्ता भारत नामक ब्रिटिश उपनिवेश के उस 'देशी' भौतिकशास्त्री को माउंट विल्सन दल में आमंत्रित नहीं किया गया। साहा वापस कलकत्ता आ गए और कुछ ही समय बाद इलाहाबाद चले गए।

विज्ञान और समाज

1930 तक साहा विज्ञान पढ़ाने और शोध में पूरी तरह डूबे हुए थे। राष्ट्रीय विकास में विज्ञान और शोध की भूमिका पर सोचने और काम करने का उनका दौर इसके बाद शुरू होता है। इस दिशा में उनके द्वारा किए गए काम को मुख्यत: दो भागों में बांटा जा सकता है।

पहले में वो गतिविधियां आती हैं जिनमें उन्होंने देश में वैज्ञानिक शोध के लिए अवसर बढ़ाने, विशेष शोधों के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना, स्थापित संस्थानों में चल रहे शोध कार्यों का दायरा बढ़ाने, शोध पत्रिकाएं निकालने तथा इन शोधों के राष्ट्रीय विकास में इस्तेमाल आदि से संबंधित प्रयास किए।

कलकत्ता में 1933 में स्थापित हुई 'इंडियन फिज़िकल सोसायटी' और 1935 में स्थापित 'इंडियन साइंस न्यूज़ एसोसिएशन' के पीछे साहा का ही योगदान न था। 1938 में जर्मन वैज्ञानिक ओट्टो हान यूरेनियम के आण्विक विखंडन (Nuclear Fission) की घोषणा की। साहा ने तुरंत ही भविष्य में इसको मिलने वाले महत्व को पहचान लिया। इस समय वो कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'पालित

प्रोफसर' थे। उन्होंने एम. एस. सी. के पाठ्यक्रम में तुरंत ही आण्विक भौतिकी को एक विशेष विषय के रूप में शामिल कर लिया।

इसी दिशा में उनके अगले प्रयासों के चलते 1948 में कलकत्ता में 'इंस्टिट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिज़िक्स' की स्थापना हुई (जिसे उनकी मृत्यु के बाद साहा इंस्टिट्यूट का नाम दिया गया।) उन्होंने यह भी कोशिश की कि बिखरे हुए विश्वविद्यालयों को जोड़कर एक मज़बूत राष्ट्रीय शोध तंत्र का निर्माण किया जाए। किंतु धन के अभाव, प्रशिक्षित वैज्ञानिकों की कमी और विश्वविद्यालय के लालफीताशाही संगठन के कारण सफलता नहीं मिली।

अपने काम के दूसरे हिस्से में उनका सरोकार देश के आर्थिक विकास के लिए वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक तरीकों के बेहतर इस्तेमाल से था।

1935 से 1953 तक साहा राष्ट्रीय नियोजन में विज्ञान के योगदान से संबंधित अपने विचारों को 'साइंस एंड कल्चर' नामक पत्रिका के माध्यम से व्यक्त करते रहे। इसी के ज़रिए उन्होंने राष्ट्रीय नियोजन, सार्वजनिक क्षेत्र, औद्योगीकरण, पनबिजली, नाभिकीय ऊर्जा, आधुनिकीकरण में विज्ञान व तकनॉलाजी की भूमिका आदि के साथ-साथ भारतीय कला, पुरातत्व और प्राचीन काल में विज्ञान, आदि विषयों पर अपने ज़बर्दस्त विचार व्यक्त किए।

ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय विकास में विज्ञान व तकनॉलाजी की भूमिका को लेकर नेहरू पर प्रभाव डालने में साहा का ही हाथ था। 1938 से वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की योजना समिति के सदस्य थे। नेहरू इस समिति के अध्यक्ष थे। सन 1942 से वे विज्ञान व औद्योगिक शोध परिषद के सदस्य रहे। 1951 में साहा एक निर्दलीय के रूप में लोक सभा के सदस्य चुने गए। लोक सभा में उन्होंने सरकार की विज्ञान, तकनॉलाजी और विकास संबंधी कई नीतियों की आलोचना की।

16 फरवरी को दिल्ली में योजना आयोग के दफ्तर की ओर जाते हुए उन्हें दिल का दौरा पड़ा और वे गिर पड़े। उन्हें तुरंत अस्पताल ले जाया गया लेकिन वे फिर कभी नहीं उठ सके। इस तरह भारत के 62 वर्ष की आयु के एक लगनशील, दूरदर्शी वैज्ञानिक का अंत हो गया।

यह लेख एकलव्य द्वारा प्रकाशित विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी की फीचर सर्विस 'स्रोत' के अक्टूबर 1989 अंक से लिया गया है।

आर्यभ[illegible]
महान ग[illegible]

गुणा[illegible]

करीब एक हज़ार साल [illegible] भारत में। वहीं जहां बाद में उन्हें [illegible]ान गणितज्ञ स्वीकार[illegible] ऐसे सवाल हमें उ[illegible]र राजनैतिक माहौल में फिर से[illegible] क्या मान्यताएं मौजूद थीं उस [illegible] गैलीलियो और ब्रूनो भी याद [illegible] की मान्यताओं के चलते [illegible]ना पड़ा था।

कभी-कभी [illegible] भी स[illegible] किए जाते। [illegible] वैज्ञानिक [illegible] हैं, उपेक्षि[illegible]

[illegible] इस तरह के अनेक उदाहरण मिलते [illegible]। ऐसा ही एक उदाहरण है आर्यभट, [illegible] और गणित-ज्योतिष* से संबंधित [illegible] उनका क्रांतिकारी कृतित्व। आज हम [illegible] यकीन के साथ कह सकते हैं कि आर्यभट

* आज [illegible]ारत में ज्योतिष की दो शाखाएं थीं। गणित ज्योतिष जिस में [illegible]आदि पिंड कितनी दूरी पर हैं, कितने दिनों में किन मार्गों से [illegible]शाखा, फलित ज्योतिष में ग्रह, नक्षत्रों आदि के मनुष्य जाति पर पड़ने वाले [illegible] पर विचार होता था।

प्राचीन भारत के एक सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ-ज्योतिषी थे। अब पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि आर्यभट अपने समय (ईसा की पांचवी-छठी सदी) के संसार के एक महान वैज्ञानिक थे। मगर उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक भारतवासी उन्हें लगभग भूल ही गए थे। उनके ग्रंथ *आर्यभटीय* की हस्तलिपियां पिछली कई सदियों से भारत के अधिकांश प्रदेशों से लुप्त रही हैं। उनका एक अन्य ग्रंथ *आर्यभट-सिद्धांत* आज भी अप्राप्य है।

भूमिका

ऐसी बात नहीं है कि आर्यभट और उनका कृतित्व आरंभ से ही उपेक्षित रहा। स्पष्ट जानकारी मिलती है कि आर्यभट का जन्म 476 ई. में हुआ था और उन्होंने अपना *आर्यभटीय* ग्रंथ 499 ई. में या उसके कुछ साल बाद लिखा। उनके इस ग्रंथ में नवीनता थी, उनकी कई परिकल्पनाएं क्रांतिकारी थीं, ग्रंथ सूत्र-शैली में लिखा गया था, इसलिए उन्हें और उनकी कृति को बहुत जल्दी ख्याति मिल गई।

आर्यभटीय की आज जो करीब एक दर्जन टीकाएं उपलब्ध हैं उनमें सबसे प्राचीन और सबसे उत्तम है, भास्कर प्रथम का *आर्यभटीय-भाष्य*, जो उन्होंने वलभी (सौराष्ट्र, गुजरात) में 629 ई. में लिखा था। भास्कर अपने दो अन्य ग्रंथों में आर्यभट के लिए 'श्रीमद्‌भट' और 'प्रभु' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं और *आर्यभटीय* को 'तपोभिराप्तम्' अर्थात 'तप से प्राप्त किया हुआ' बताते हैं। आर्यभट की स्तुति में रचे गए उनके दो श्लोकों का आशय है: "उन आर्यभट की जय हो जिनका ज्योतिष-शास्त्र बहुत काल तक सुदूर देशों में स्फुट फल देता है और जिनका यश सागर के पार तक पहुंच गया है। आर्यभट के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रहों की गति जानने में समर्थ नहीं है। अन्य लोग गहन अंधकार के समुद्र में घूम रहे हैं।"

यह भी पता चलता है कि 800 ई. के आसपास 'आर्यभटीय' का *जीज अल् अर्जबहर* के नाम से अरबी में अनुवाद हुआ था, परन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। स्वदेश में भी आर्यभट के ग्रंथ का इतना अधिक प्रभाव रहा कि हमारे देश में ग्रहगणित के सौर और ब्रह्म पक्षों के साथ-साथ एक स्वतंत्र आर्य पक्ष भी अस्तित्व में आ गया था।* आर्यभटीय के आधार पर कई स्वतंत्र ज्योतिष-ग्रंथ भी लिखे गए।

* गणित-ज्योतिष में ग्रहों व नक्षत्रों से संबंधित गणनाएं तीन सिद्धांतों के आधार पर की जाती थीं — सूर्य-सिद्धांत, ब्रह्म-सिद्धांत और आर्य-सिद्धांत। इनमें जो तरीके या 'सिस्टम' अपनाए गए हैं उन्हें सौर पक्ष, ब्रह्म पक्ष और आर्य पक्ष कहा जाता है।

दरअसल, आरंभ में कुछ सदियों तक गणित-ज्योतिष जगत में आर्यभट का खूब सम्मान रहा। परंपरा से प्रचलित एक काफी पुराने श्लोक के अनुसार, "पंचसिद्धांतों (पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश, रोमक और सौर) की पद्धतियों से गणित करने पर ग्रहों के गमन और ग्रहण आदि के बारे में जो दृष्टिवैषम्य (यानी गणना और अवलोकन में अंतर) प्रकट होता था उसे दूर करने के लिए कलियुग में स्वयं सूर्य भगवान कुसुमपुर में आर्यभट के नाम से भूगोलविद् और कुलपति होकर अवतरित हुए।"

आर्यभट का कृतित्व

प्राचीन भारत में आर्यभट और उनके कृतित्व की इस तरह की ख्याति का प्रमुख कारण था उनके द्वारा प्रतिपादित नए सिद्धांत। आगे बढ़ने के पहले आर्यभट की कुछ विशिष्ट उपलब्धियों पर एक नज़र डाल लेना उपयोगी होगा:

1. आर्यभट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भूभ्रमण (अर्थात पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है) का सिद्धांत प्रस्तुत करने वाले वे पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं।
2. आर्यभट ने सूर्य-ग्रहण और चंद्र-ग्रहण के सही कारण बताए।
3. प्राचीन भारत के अधिकांश विचारकों ने पंचमहाभूत का प्रतिपादन किया, किन्तु आर्यभट ने केवल चार महाभूतों – मिट्टी, जल, अग्नि और वायु को ही स्वीकार किया।*
4. आर्यभट ने महायुग को चार समान भागों में विभाजित किया, न कि मनुस्मृति की तरह 4 : 3 : 2 : 1 के अनुपात में।
5. आर्यभट ने वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात (पाई, π) का मान 3.1416 दिया है, और इसे भी उन्होंने आसन्न यानी सन्निकट मान कहा है।
6. आर्यभट ने $3^{0}45'$ के अंतर पर अर्धज्याओं** के जो मान दिए हैं उनमें और आधुनिक त्रिकोणमिति

* भारतीय दर्शन के अनुसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी – इन पांच मूल तत्वों से सृष्टि की रचना हुई है। आर्यभट ने इनमें से आकाश को अलग कर दिया।

** ज्या वह रेखा जो वृत्त की किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गई हो। यानी वृत्त की परिधि के किन्हीं दो बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा।

द्वारा प्राप्त मानों में बहुत कम फर्क है।

7. अनिर्णीत समीकरण (indeterminate equation of the first order) का व्यापक हल प्रस्तुत करने वाले आर्यभट पहले गणितज्ञ हैं।

8. आर्यभट ने संस्कृत वर्णमाला का उपयोग करके एक नई अक्षरांक पद्धति को जन्म दिया। *आर्यभटीय* में वर्णित एक श्लोक से स्पष्ट है कि वे नई स्थानमान-युक्त अंक पद्धति से भी भलि भांति परिचित थे।

9. अक्षरांक पद्धति का उपयोग करके आर्यभट ने गणित व ज्योतिष को अपनी सिद्धांत-सूत्र शैली में प्रस्तुत किया। आर्यभट के सूत्रों और सिद्धांतों से प्राप्त परिणाम अवलोकन के अनुरूप थे, इसलिए भी प्राचीन भारत में उनके कृतित्व को बड़ी ख्याति मिली थी।

आर्यभटीय – पुस्तक का लोप

फिर क्या वजह है कि आर्यभट आधुनिक काल में लगभग नामशेष हो गए? अभी कुछ दशक पहले तक वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य की तुलना में आर्यभट की चर्चा बहुत कम होती थी। करीब चार दशक पहले *आर्यभटीय* की प्रकाशित प्रतियां भी भारत में सहज उपलब्ध नहीं थीं।

वस्तुत: पिछले करीब एक हज़ार वर्षों की कालावधि में आर्यभट का *आर्यभटीय* ग्रंथ लुप्तप्राय रहा, विशेष कर उत्तर भारत में। अल्बेरूनी (973-1048 ई.) ने करीब 13 साल तक भारत में रहकर मूल संस्कृत पुस्तकों से भारतीय गणित-ज्योतिष का व्यापक परिचय प्राप्त किया था, परंतु वे खेद के साथ लिखते हैं: "आर्यभट की कोई भी पुस्तक मैं प्राप्त नहीं कर सका। उनके बारे में मेरी सारी जानकारी ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रस्तुत उद्धरणों पर आधारित है।"

आंग्ल (अंग्रेज़) संस्कृतज्ञ हेनरी टॉमस कोलब्रूक ने 1817 ई. में जब भारतीय बीजगणित की विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत किया, तब आर्यभट का ग्रंथ उन्हें उपलब्ध नहीं था। शंकर

बालकृष्ण दीक्षित ने अपने *भारतीय ज्योतिष* में 1898 ई. में लिखा था: "आर्यसिद्धांत और आर्यपक्ष शब्द तो हमारे देश में प्रसिद्ध हैं, पर प्रत्यक्ष *आर्यसिद्धांत* ग्रंथ विशेषत: किसी को ज्ञात नहीं है। हम समझते हैं, महाराष्ट्र में किसी भी ज्योतिषी के पास इसकी प्रति नहीं होगी।" तात्पर्य यह कि, पिछली कई सदियों से समूचे उत्तर भारत में, और महाराष्ट्र में भी, आर्यभटीय की प्रतियां अप्राप्त रहीं।

कैसे मिली 'आर्यभटीय'

परंतु सुदूर दक्षिण भारत में, मुख्यत: मलयालम लिपि में, टीकाओं सहित *आर्यभटीय* की कई हस्तलिपियां उपलब्ध थीं। उनमें से कुछ हस्तलिपियां यूरोप के संग्रहालयों में भी पहुंच गई थीं, मगर उनका अध्ययन और प्रकाशन नहीं हो पाया था, और न ही उनके आधार पर किसी यूरोपीय विद्वान ने आर्यभट का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया था। सर्वप्रथम यह काम किया डा. भाऊ दाजी लाड (1824-74 ई.) ने। उन्होंने 1865 ई. में केरल की यात्रा करके वहां मलयालम लिपि में *आर्यभटीय* की तीन ताड़पत्र पोथियां खोजीं। उनका अध्ययन करके भाऊ दाजी ने आर्यभट और *आर्यभटीय* के बारे में एक खोजपरक निबंध तैयार किया, जो 1863 ई. में लंदन की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ। तभी विद्वज्जगत को आर्यभट के समय और उनके ग्रंथ के बारे में पहली बार प्रामाणिक जानकारी मिली।

डा. भाऊ दाजी ने अपने निबंध में सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि शुद्ध नाम 'आर्यभट' ही है, न कि 'आर्यभट्ट'। उन्होंने बताया कि *आर्यभटीय* के दो भाग हैं – दशगीतिका और आर्याष्टशत। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 'आर्याष्टशत' शब्द का अर्थ है – आर्या छंद में 108 श्लोक, न कि 800 श्लोक। डा. भाऊ दाजी *आर्यभटीय* को संपादित करके प्रकाशित कर देना चाहते थे, किन्तु सन् 1874 में असामयिक निधन के कारण वे इस कार्य को पूरा नहीं कर सके।

आर्यभटीय: पुस्तक का प्रकाशन

मगर अब यूरोप के विद्वानों को आर्यभट का महत्व काफी स्पष्ट हो गया था। यूरोप के जिन चंद संस्कृतज्ञों को आर्यभट के कृतित्व की थोड़ी-बहुत जानकारी थी उनमें से एक थे हैन्द्रिक केर्ण, जो अपने को 'भट्टकर्ण' भी लिखते थे। उन्होंने यूरोप में पहुंची *आर्यभटीय* की मलयाली हस्तलिपियों का उपयोग करके परमेश्वर (ईसा की 15वीं सदी) की टीका सहित *श्रीमदार्यभटीयम्* को सन् 1874 में लाइडेन (नीदरलैंड) से प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार पहली बार *आर्यभटीय*

का मुद्रित संस्करण उपल[illegible] फिर उदयनारायण सिं[illegible] मे *आर्यभटीय* की मुद्रित [illegible] और उसे हिन्दी अनुवा[illegible] 1906 में मधुरपुर ([illegible] से प्रकाशित किया। *आ*[illegible] प्रबोधचंद्र सेनगुप्त का अं[illegible] सन् 1927 में कलक[illegible] वॉल्टेर यूजेन क्लार्क का अं[illegible] सन् 1930 में शिकागो से प्रकाशित हुआ। पं. बलदेव मिश्र का *आर्यभटीय* का हिन्दी व्याख्या सहित नया संस्करण सन् 1966 में पटना से प्रकाशित हुआ। वे यह भी बताते हैं कि "मेरे गुरुदेव म. म. पं. सुधाकर द्विवेदीजी ने इस पर इसलिए टीका नहीं लिखी कि उन्हें *आर्यभटीय* की कोई अच्छी पांडुलिपि नहीं मिली।"

क्या कारण है कि समूचे उत्तर भारत से, *आर्यभटीय* की प्रतियां गायब हो गई और सुदूर दक्षिण भारत में, प्रमुखतः केरल में ही, हमारे समय तक जैसे-तैसे टिकी रहीं? उत्तर भारत के अधिकांश हिस्सों से *आर्यभटीय* के लुप्त हो जाने के कारणों का विवेचन हम आगे करेंगे। पहले यह देखें कि प्रमुखतः केरल में ही *आर्यभटीय* की प्रतियां क्यों उपलब्ध रहीं।

आर्यभटीय की जो ताड़पत्र-पोथियां मिली हैं उनमें से अधिकांश केरल से प्राप्त हुई और वे मलयाली लिपि में हैं। *आर्यभटीय* पर जो [illegible] उपलब्ध हैं उनमें बारह केरलीय [illegible] हैं। पता चलता है कि [illegible] कुछ समय बाद ही केरल [illegible]*य* का प्रचार हो गया था। [illegible]णितज्ञ-ज्योतिषी अपने [illegible] के अनुसार इसमें संशोधन [illegible]मिल और मलयाली भाषी [illegible]रमान का पंचांग चलता है [illegible]र्यपक्षीय है, अर्थात उनका [illegible]र्यसिद्धांत के अनुसार है।

आर्यभटीय — पुस्तक का प्रसार

अब आर्यभट के अध्ययन के लिए काफी सामग्री उपलब्ध हो गई है। सन् 1976 में आर्यभट की 1500 वीं जयंती मनाई गई और उस अवसर पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, ने *आर्यभटीय* के तीन प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किए। उनमें से एक में विस्तृत टिप्पणियों सहित अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। इसी अवसर पर अकादमी ने *आर्यभटीय* का व्याख्या सहित एक अच्छा हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया।

आर्यभटीय ग्रंथ दुरूह है, सूत्र शैली में लिखा गया , इसलिए उसके प्रकाश में आने के बाद भी आर्यभट की चर्चा [illegible] तक ही सीमित रही। भारत के पहले कृत्रिम उपग्रह को 'आर्यभट' नाम देकर 19 अप्रैल, 1975 को अंतरिक्ष में छोड़ा गया, तभी जाकर

आर्यभट द्वितीय

यहां यह बता देना उपयुक्त होगा कि इतिहास में आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी हुए हैं। उनका समय ईसा की दसवीं सदी है और उनका *महासिद्धांत* नामक एक ग्रंथ मिलता है। दोनों में भेद करने के लिए 'आर्यभटीय' के रचनाकार को प्रायः वृद्ध आर्यभट या आर्यभट-प्रथम कहा जाता है। और *महासिद्धांत* के रचयिता को आर्यभट-द्वितीय। द्वितीय आर्यभट अपने को प्रथम आर्यभट का अनुयायी बताते हैं, परंतु दोनों द्वारा प्रतिपादित कई मान्यताओं में काफी अंतर है।

प्राचीन भारत के इस महान गणितज्ञ-ज्योतिषी का नाम देश के कोने-कोने मे फैला। फिर अगले साल आर्यभट की 1500 वीं जयंती का आयोजन हुआ और *आर्यभटीय* के तीन-चार बढ़िया संस्करण उपलब्ध हुए, जिससे उनके बारे में विस्तृत जानकारी औरों तक पहुंची।

आर्यभट परंपरावादी नहीं थे। उन्होंने पुरानी मान्यताओं का अंधानुकरण नहीं किया। कई पुरानी मान्यताओं को – श्रुति-स्मृति और पुराणों द्वारा समर्थित होने पर भी – उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गणित-ज्योतिष के वही सिद्धांत प्रतिपादित किए जो उन्हें सही और उपयुक्त प्रतीत हुए। *आर्यभटीय* के एक अंतिम श्लोक में उन्होंने लिखा भी है: "यथार्थ और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में से मैंने यथार्थ ज्ञान के डूबे हुए रत्न को ब्रह्म के प्रसाद से, अपनी बुद्धि रूपी नाव की सहायता से बाहर निकाला है।"

आर्यभट के साथ भारतीय गणित-ज्योतिष में एक नई परंपरा शुरू होती है। *आर्यभटीय* को भारतीय गणित-ज्योतिष का प्रथम 'पौरुषेय' ग्रंथ माना जाता है; इसके पहले के ग्रंथों को 'अपौरुषेय' माना गया है। अपौरुषेय का आशय यही है कि वे ग्रंथ मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं, दैवीय प्रेरणा से लिखे गए संदेश हैं। पौरुषेय ग्रंथ आचार्यों द्वारा लिखे गए। आर्यभटीय भारतीय विज्ञान का पहला ग्रंथ है जिसमें रचनाकार ने अपने नाम, स्थान और समय के बारे में स्पष्ट जानकारी दी है।

2

जन्म, स्थान और काल

प्राचीन भारत में अधिकांश ग्रंथों में उनके रचनाकारों के बारे में कोई नहीं मिलती। विज्ञान से

संबंधित ग्रंथों और उनके रचनाकारों का भी यही हाल है। *वेदांग-ज्योतिष, शूल्वसूत्र, बक्षाली हस्तलिपि, चरक-संहिता, सुश्रुत-संहिता, सूर्य-सिद्धांत* आदि ग्रंथों के रचनाकाल के बारे में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती, न ही इनके रचयिताओं की जीवनियां मिलती हैं।

ऐसी स्थिति में यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आर्यभट अपने ग्रंथ में अपने नाम का स्पष्ट उल्लेख करते हैं और अपने समय के बारे में भी सुस्पष्ट सूचना देते हैं। अपने जन्मकाल की जानकारी देने वाले आर्यभट प्राचीन भारत के संभवत: पहले वैज्ञानिक हैं। इसका एक कारण भी है। ज्योतिष के ग्रंथों में गणनाएं एक सुनिश्चित समय से शुरू करनी पड़ती हैं। इसी संदर्भ में ज्योतिषी अक्सर अपने समय की भी जानकारी प्रस्तुत कर देता है। आर्यभट ने इस प्रथा की नींव डाली। बाद में कई ज्योतिषियों ने उनका अनुकरण किया। इसलिए हमें आर्यभट के बाद के कई गणितज्ञ-ज्योतिषियों के बारे में यह जानकारी मिल जाती है कि उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना किस वर्ष में की थी।

आर्यभट अपने *आर्यभटीय* ग्रंथ में दो स्थानों पर अपने नाम का उल्लेख करते हैं। जैसा कि पहले भी बताया गया है, उनका सही नाम 'आर्यभट' ही है, न कि 'आर्यभट्ट'। भट का अर्थ है 'योद्धा'। बाद के ज्योतिषियों ने भी उन्हें आर्यभट नाम से ही स्मरण किया है।

आर्यभट का जन्म:

आर्यभट-प्रथम अपने जन्मकाल के बारे में सुस्पष्ट जानकारी देते हैं। *आर्यभटीय* के एक श्लोक में वे बताते हैं: "साठ वर्षों की साठ अवधियां और तीन युगपाद जब बीत चुके थे, तब मेरे जन्म के बाद 23 वर्ष गुज़र चुके थे।" अर्थात तीन युगों (कृत, त्रेता तथा द्वापर) के बीत जाने के बाद कलियुग के भी 60 x 60 = 3600 वर्ष बीत चुके थे, तब आर्यभट की आयु 23 साल की थी।

भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार, 'कलि' यानी कलियुग के 3179 वर्ष बीतने पर शककाल का आरंभ हुआ था। अत: आर्यभट 3600 – 3179 = 421 शक में 23 वर्ष के थे। यानी उनका जन्म 398 शक अथवा 476 ई. में हुआ था, और 499 ई. में वे 23 साल के रहे होंगे।*

आर्यभट के समय में अभी शककाल का विशेष प्रचार नहीं रहा होगा,

* शक संवत और अंग्रेजी कैलेंडर में 78 साल का अंतर होता है। अभी शक संवत वर्ष 1920 चल रहा है।

इसलिए अपने जन्मकाल की सूचना उन्होंने कलिवर्ष में दी है। गणित-ज्योतिष के क्षेत्र में शककाल का सर्वप्रथम उल्लेख वराहमिहिर (ईसा की छठी सदी) की *पंचसिद्धांतिका* में देखने को मिलता है। उनके बाद हुए *आर्यभटीय* के भाष्यकार भास्कर-प्रथम (629 ई.) और ब्रह्मगुप्त (628 ई.), दोनों ही अपनी रचनाओं में शककाल का उल्लेख करते हैं।

मगर सवाल उठता है कि आर्यभट ने कलि के बाद 3600 (499 ई.) का उल्लेख किस प्रयोजन से किया? क्या केवल यह बताने के लिए कि उस समय उनकी आयु 23 साल थी? या कि यह भी कि उस वर्ष उन्होंने *आर्यभटीय* की रचना की? *आर्यभटीय* के कुछ टीकाकारों का, और कुछ आधुनिक विद्वानों का भी मत है कि *आर्यभटीय* की रचना का काल भी यही है। परंतु अन्य कई विद्वान इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार, इसका प्रयोजन संभवतः यही स्पष्ट करना रहा है कि कलि 3600 में विषुव-अयन शून्य था, इसलिए आर्यभट द्वारा दी गई ग्रहों के चक्करों की गणनाओं से, ग्रहों की स्थितियां जानने के लिए बीजगणितीय गणनाएं करके जोड़-घटाने की ज़रूरत नहीं है। इन विद्वानों का कहना है कि *आर्यभटीय* एक प्रौढ़ अवस्था वाले आचार्य की रचना प्रतीत होती है।

आर्यभट सुस्पष्ट जानकारी नहीं देते कि वे कहां के निवासी थे, मगर *आर्यभटीय* के द्वितीय भाग गणितपाद के मंगलाचरण में कहते हैं: "ब्रह्मा, पृथ्वी, चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि तथा नक्षत्रों को नमस्कार करके आर्यभट इस कुसुमपुर में अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है।'

यहां आर्यभट ने नहीं कहा है कि उनका जन्म कुसुमपुर में हुआ है। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि कुसुमपुर में आदृत ज्ञान (गणित-ज्योतिष) का वे वर्णन कर रहे हैं। पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) को पुष्पपुर और कुसुमपुर के नाम से भी जाना जाता था। कई संस्कृत रचनाकारों ने पाटलिपुत्र को

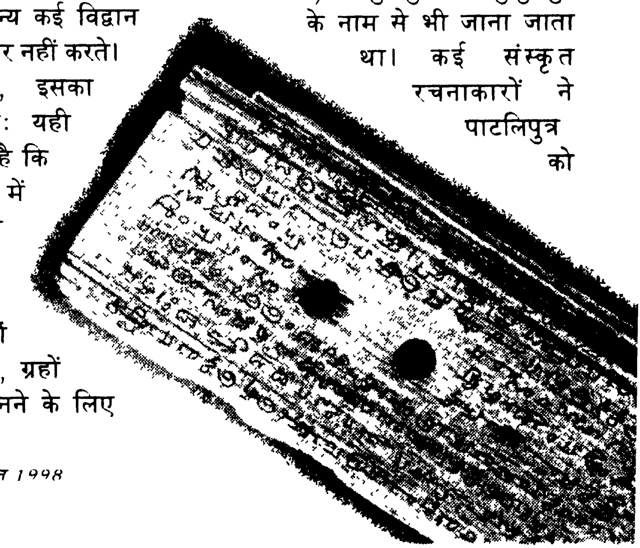

कुसुमपुर कहा है। *आर्यभटीय* के सबसे पुराने भाष्यकार भास्कर-प्रथम (629 ई.) ने भी मगध के पाटलिपुत्र को ही कुसुमपुर माना है। वे यह भी बताते हैं कि कुसुमपुर में स्वायंभुव या ब्रह्मसिद्धांत का विशेष आदर था। *आर्यभटीय* के मंगलाचरणों में और अंतिम श्लोक में स्वयंभू ब्रह्मा को शायद इसीलिए सर्वप्रथम नमस्कार किया गया है।

अत: यह लगभग निर्विवाद तय हो जाता है कि आर्यभट ने कुसुमपुर (पटना) में रहकर अपने ग्रंथ की रचना की थी। मगर उन्होंने यह नहीं कहा कि उनका जन्म भी कुसुमपुर में ही हुआ था। आर्यभट के जन्मस्थान की सूचना अन्य स्रोतों से मिलती है।

अश्मक आर्यभट:

आर्यभटीय के भाष्यकार भास्कर-प्रथम ने आर्यभट को अश्मक, *आर्यभटीय* को आश्मकतंत्र तथा आश्मकीय और आर्यभट के अनुयायियों को आश्मकीया: कहा है। आर्यभट के टीकाकार नीलकंठ (पंद्रहवीं सदी) ने भी लिखा है कि आर्यभट का जन्म अश्मक जनपद में हुआ था (अश्मकजनपदजात)।

बुद्धकालीन सोलह महाजनपदों में एक जनपद अश्मक (अस्सक) भी था। यह दक्षिण में गोदावरी तट के आसपास था और इसकी राजधानी पतिठ्ठान (महाराष्ट्र के औरंगाबाद के पास प्रतिष्ठान, पैठण) में थी। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में जिस अश्मक प्रदेश का उल्लेख है वह भी महाराष्ट्र में था। *दशकुमारचरित* (दंडी) का अश्मक राज्य विदर्भ के अन्तर्गत था।

ईसा की पांचवीं सदी का अंतिम चरण गुप्त साम्राज्य के अवसान का काल था। मगर दक्षिणापथ के अश्मक प्रदेश पर उस समय वा ां की वत्सगुल्म (आधुनिक वाशीम, विदर्भ) शाखा के राजा हरिषेण का शासन था। गुप्तों और वाकाटकों के संबंध अच्छे थे। अत: वाकाटकों के प्रभावक्षेत्र में पैदा हुए आर्यभट विशिष्ट अध्ययन या अध्यापन के लिए कुसुमपुर

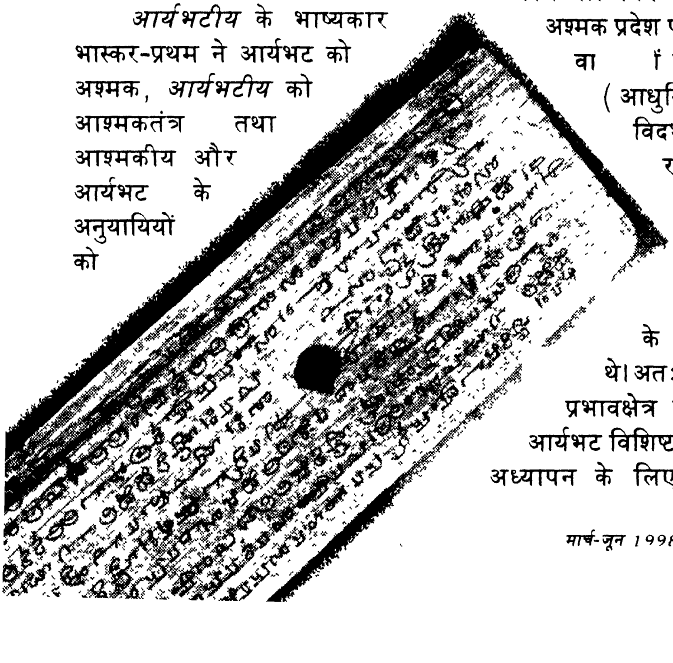

(पाटलिपुत्र) चले आए हों, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उस समय पाटलिपुत्र ज्योतिष के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। वहां एक वेधशाला भी थी। पटना के एक इलाके को आज भी खगौल (खगोल) के नाम से जाना जाता है, जिससे पता चलता है कि किसी समय वहां एक वेधशाला थी। नालंदा की प्रसिद्ध विद्यापीठ भी बहुत दूर नहीं थी।

भास्कर-प्रथम के ग्रंथों से पता चलता है कि आर्यभट अध्यापक थे, आचार्य थे। भास्कर यह भी सूचना देते हैं कि पांडुरंगस्वामि, लाटदेव और निःशंकु ने आर्यभट के चरणों में बैठकर ज्योतिष विद्या अर्जित की थी। आर्यभट के इन शिष्यों में लाटदेव का भारतीय गणित-ज्योतिष के इतिहास में विशेष स्थान है।

बस, आर्यभट के जीवन के बारे में इतनी ही प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है। हम नहीं जानते कि उनके माता–पिता के नाम क्या थे, गोत्र क्या था, उन्होंने कहां और किससे शिक्षा प्राप्त की, उन्होंने कुल कितने ग्रंथों की रचना की और उनका देहांत किस साल में हुआ।

प्राचीन भारत की बहुत-सी विभूतियों के बारे में अनेक दंतकथाएं प्रसिद्ध हैं। कालिदास और वराहमिहिर के बारे में बहुत-से आख्यान सुनने-पढ़ने को मिलते हैं। परंतु आर्यभट के बारे में कोई आख्यान या दंतकथा प्रसिद्ध नहीं है। एक प्रकार से यह अच्छा ही है। दंतकथाओं से सच्चाई को खोज निकालने में बड़ी कठिनाई होती है। जब देखते हैं कि प्राचीन भारत के अधिकतर महापुरुषों का समय निर्धारित कर पाना भी संभव नहीं है, तो आर्यभट का जन्मवर्ष ठीक-ठीक ज्ञात होना ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वस्तुतः सबसे बड़ी उपलब्धि है- *आर्यभटीय* ग्रंथ, जिसका समुचित मूल्यांकन हमारे समय में ही संभव हुआ है।

3

आर्यभटीय

प्राचीन भारत में गणित और ज्योतिष का अध्ययन साथ-साथ होता था, इसलिए प्रायः एक ही पुस्तक में गणित और ज्योतिष की जानकारी प्रस्तुत कर दी जाती थी। *आर्यभटीय* पुस्तक भी ऐसी ही है।

गणित-ज्योतिष के ग्रंथ मुख्यतः तीन प्रकार के थे – सिद्धांत, तंत्र और करण। जिस ग्रंथ में गणना कल्प*

---

* काल का एक बड़ा विभाग जो एक हज़ार महायुगों या 4 अरब 32 करोड़ (4,32,00,00,000) वर्ष का कहा गया है।

से आरंभ की जाती थी उसे 'सिद्धांत', जिसमें कलियुग से आरंभ की जाती थी उसे 'तंत्र' और जिसमें वर्तमान काल के किसी निश्चित क्षण से गणना की जाती थी उसे 'करण' कहा जाता है। *आर्यभटीय* में महायुग और कलियुग के दिनों की संख्याएं दी गई हैं, इसलिए यह तंत्र-ग्रंथ है। ब्रह्मगुप्त ने इसे तंत्र मानकर ही अपने सिद्धांत के तंत्र-परीक्षाध्याय में इसकी आलोचना की है। मगर *आर्यभटीय* में कल्पारंभ से भी दिनों की संख्याएं बताई गई हैं, इसलिए इसे सिद्धांत-ग्रंथ भी माना जा सकता है।

स्वयं आर्यभट ने ही पुस्तक को *आर्यभटीय* नाम दिया है। पुस्तक के अंतिम श्लोक में वे बताते हैं: "पहले स्वयंभू ब्रह्मा ने जो ज्ञान कहा था तथा जो सत्य है, उसी ज्ञान को *आर्यभटीय* के नाम से प्रस्तुत किया गया है।"

आर्यभटीय में कुल 121 श्लोक हैं, जिन्हें आज दस पृष्ठों की एक मुद्रित पुस्तिका में बड़े आराम से प्रस्तुत किया जा सकता है। पुस्तक चार पादों (चरणों या भागों) में विभक्त है – गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। गीतिकापाद में कुल 13 श्लोक हैं। इनमें दस श्लोक गीतिका छंद में हैं, इसलिए इस पाद को दशगीतिका-सूत्र भी कहते हैं। इस भाग के प्रथम श्लोक में ब्रह्मा की वंदना है और पुस्तक के आगे के तीन पादों के नाम-निर्देश हैं। फिर, केवल एक ही श्लोक में, आर्यभट अपनी नई अक्षरांक पद्धति के सारे नियम प्रस्तुत कर देते हैं। अंतिम 13 वें श्लोक में दशगीतिका-सूत्र की स्तुति है। शेष दस श्लोकों में आकाशीय पिंडों के चक्कर (भगण), कल्प तथा युग के परिमाण, 24 अर्धज्याओं के मान आदि विषय सूत्र-रूप में हैं।

गणितपाद में गणित के विषय अत्यंत संक्षिप्त रूप में कुल 33 श्लोकों में दिए हैं। इनमें पाई (π) का मान और प्रथम घात के अनिर्णीत समीकरणों (कुट्टक गणित) का विवेचन विशेष महत्व का है।

कालक्रियापाद में 25 श्लोक हैं, जिनमें काल-गणना के बारे में बहुत-सी बातों की जानकारी दी गई है।

चौथे और अंतिम पाद, गोलपाद में 50 श्लोक हैं, जिनमें खगोल के विभिन्न वृत्तों को समझाकर पृथ्वी, चंद्र तथा ग्रहों की गतियों को स्पष्ट किया गया है। ग्रहणों के कारण भी बताए गए हैं। इसी गोलपाद में आर्यभट ने प्रतिपादित किया है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और तारामंडल स्थिर है।

आर्यभटीय में केवल एक ही देवता ब्रह्मा की वंदना है। हमारे यहां परम्परागत प्राचीन ज्ञान को देवताओं का प्रसाद माना जाता रहा है। जैसे, मान लिया गया कि ब्राह्मी लिपि देवता

ब्रह्मा की देन है। उसी प्रकार, भारत के परम्परागत ज्योतिष-ज्ञान को भी ब्रह्मोक्त मान लिया गया। ब्रह्म या पितामह या स्वायंभुव सिद्धांत सबसे प्राचीन था और कुसुमपुर में इसका विशेष आदर था, इसलिए आर्यभट की इसके प्रति अधिक आसक्ति थी।

वस्तुत: *आर्यभटीय* ब्रह्मपक्ष का ही ग्रंथ है। मगर *आर्यभटीय* में विषय का प्रतिपादन सूत्र-शैली में था, सुस्पष्ट था, इसमें नए विचार थे और इसके स्थिरांक भी बेहतर थे, इसलिए इस ग्रंथ को जल्दी ही ख्याति मिल गई।

उत्तर भारत में भी ईसा की दसवीं सदी तक *आर्यभटीय* का अध्ययन होता रहा। काश्मीरी पंडित भट्टोत्पल (966 ई.) ने अपने टीका-ग्रंथों में *आर्यभटीय* के कई उदाहरण भी दिए हैं। मगर लगभग 1000 ई. से समूचे उत्तरापथ में *आर्यभटीय* के पठन-पाठन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।

आर्यभटीय पर टीकाएं:

आर्यभटीय ग्रंथ अत्यंत संक्षिप्त है, सूत्र रूप में है, इसलिए टीका के बिना इसे समझ पाना संभव नहीं है। पता चलता है कि सबसे पहले आर्यभट के शिष्य प्रभाकर ने ही इस पर टीका लिखी थी, मगर अब वह उपलब्ध नहीं है। *आर्यभटीय* की सबसे प्राचीन और सबसे उत्तम टीका जो उपलब्ध है वह है भास्कर-प्रथम का *आर्यभटीय-भाष्य*, जो उन्होंने वलभी (सौराष्ट्र, गुजरात) में 629 ई. में लिखा था। भास्कर-प्रथम ने गणित-ज्योतिष पर दो स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे – *महा-भास्करीय* और *लघुभास्करीय*। ये ग्रंथ *आर्यभटीय* में प्रतिपादित विषयों पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। दिलचस्प बात यह है कि *आर्यभटीय* की तरह भास्कर-प्रथम की कृतियां भी उत्तर भारत में लुप्त हो गई थीं। शं. बा. दीक्षित और सुधाकर द्विवेदी को भास्कर-प्रथम की कोई जानकारी नहीं थी। सन् 1930 में डा. विभूतिभूषण दत्त ने केरल के ग्रंथालयों में भास्कर-प्रथम की हस्तलिखित पुस्तकें खोज निकालीं, और उनका विवरण प्रकाशित किया, तभी विद्वज्जगत को प्राचीन भारत के इस गणितज्ञ-ज्योतिषी के बारे में जानकारी मिली।

भास्कर-प्रथम के बाद आर्यभटीय की जो टीकाएं लिखी गईं वे दक्षिण भारत के, प्रमुखत: केरल के पंडितों की हैं। इनमें सूर्यदेव यज्वा (जन्म 1191 ई.) और नीलकंठ सोमयाजी (जन्म 1444 ई.) के आर्यभटीय-भाष्य विशेष महत्व के हैं। आर्यभट की कुछ टीकाएं तेलुगु और मलयालम में भी उपलब्ध हैं।

पता चलता है कि आर्यभट ने कम-से-कम एक और ग्रंथ लिखा था, जिसका नाम *आर्यभट–सिद्धांत* था। *आर्यभट-सिद्धांत* आज उपलब्ध नहीं

है, मगर बाद के कई उल्लेखों से पता चलता है कि उसमें किस तरह की जानकारी रही होगी। जहां *आर्यभटीय* में दिन की गिनती एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक की गई है (औदायिक पद्धति), वहां *आर्यभट-सिद्धांत* में यह एक मध्यरात्रि से दूसरी मध्यरात्रि तक थी (आर्द्धरात्रिक पद्धति)। *आर्यभट-सिद्धांत* के जो 34 श्लोक उपलब्ध हुए हैं उनमें छाया, यष्टि, चक्र, घटिका, शंकु आदि ज्योतिष-यंत्रों यानी खगोल शास्त्र के यंत्रों की जानकारी है।

यहां तक हमने आर्यभट और उनके समय तथा कृतित्व का सामान्य परिचय प्राप्त किया। अगली बार हम उनके एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ *आर्यभटीय* के उन विषयों की चर्चा करेंगे जिनका भारतीय गणित-ज्योतिष के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व है।

गुणाकर मुळे: प्रसिद्ध विज्ञान लेखक। हिंदी में विज्ञान और विज्ञान के इतिहास पर शायद एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने चार दशकों तक लगातार और गंभीर लेखन किया है। उनका मूल विषय गणित रहा है। पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

कब खत्म हो रही है आपकी सदस्यता

संदर्भ के लिफाफे पर लगी पते की स्लिप पर गौर करें। इसमें पते के अलावा एक और जानकारी होती है। जो इस तरह लिखी होती है -

23rd Issue (last Issue)

इसका मतलब है कि आपकी सदस्यता 23 वें अंक में समाप्त होने वाली है। इसलिए 22वां अंक पाते ही आप नया सदस्यता शुल्क भेज दें। ताकि आगे के अंक आपको लगातार मिलते रहें।

समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव

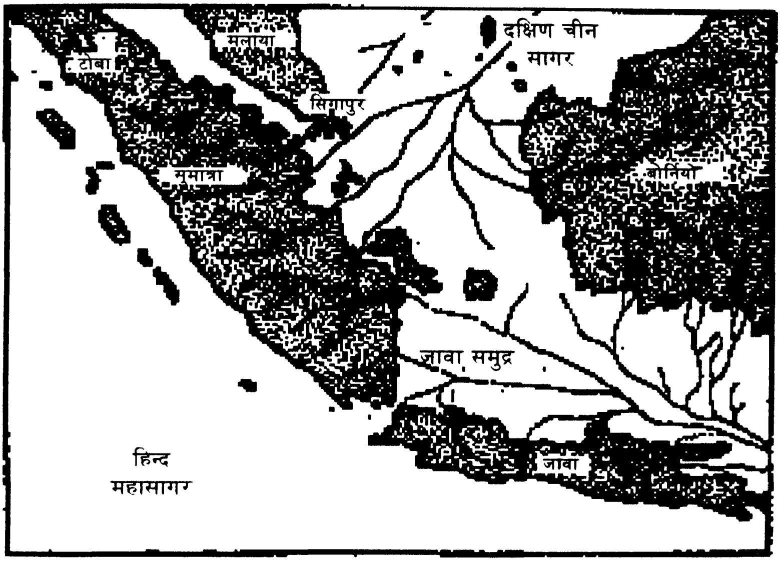

मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो द्वीप समूह का समुद्र में डूबा नदी तंत्र। किसी समय नदियां दूर तक बहती हुई समुद्र मे गिरती थीं लेकिन समुद्र का जल स्तर बढ़ने के बाद नदियां सिमट-सी गई हैं।

माधव केलकर

डूबी हुई नदी घाटी

बात इस सदी के शुरुआती सालों की है जब दुनिया भर में समुद्रों के अध्ययन का काम चल रहा था। अभी काम ने ज़ोर पकड़ा ही था कि मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो द्वीप समूह के पास समुद्र के भीतर टोह लेते हुए

एक शानदार खोज वैज्ञानिकों के हाथ लगी। यह थी – इन द्वीप समूहों का समुद्र में डूबा हुआ नदी-तंत्र। इन द्वीप समूहों का, एक लाख साल पहले तक प्रमुख नदी तथा उसकी सहायक नदियों सहित एक विकसित तंत्र होता था और ये नदियां दक्षिणी चीन सागर तथा जावा समुद्र तक सफर तय करती थीं। लेकिन समुद्र का जल स्तर बढ़ने के कारण इन द्वीपों को जोड़ने वाली ज़मीन डूब गई और साथ ही यह शानदार नदी तंत्र भी। समुद्र की तली का अध्ययन करते हुए ये प्राचीन नदी घाटियां हाथ लग गई। आज ये घाटियां समुद्र में लगभग 100 मीटर नीचे डूबी हुई हैं।

यह तो हुई एक मिसाल जो हमारे इस भ्रम को तोड़ती है कि समुद्र मे पानी का स्तर सदैव एक-सा बना रहता है। यदि धरती का इतिहास देखा जाए तो समझ में आता है कि समुद्र के जल स्तर में तो खासे उतार-चढ़ाव होते रहे हैं।

समुद्र तली में उतार-चढ़ाव

जब यह समझ बनना शुरू हुई कि समुद्र के जल स्तर में भी परिवर्तन होते हैं तो शुरुआत में यही समझा जाता रहा कि किन्हीं टेक्टॉनिक* (भूगर्भीय) गतिविधियों के कारण या समुद्र की तली में होने वाले परिवर्तनों जैसे समुद्र की तली का अवसादों (Sediments) से, लावा से भरना, तली पर नए पहाड़, गहरी दरारें आदि बनने

** टेक्टॉनिक गतिविधियो पर और जानकारी के लिए संदर्भ का अंक 14 देखिए।*

नई और पुरानी दुनिया को जोड़ने वाला पुल

दुनिया का नक्शा देखिए – एशिया महाद्वीप और उत्तरी अमरीका की ज़मीन एक दूसरे के पास तो है लेकिन आपस में जुड़ी हुई नहीं है, बीच में 'बेरिंग स्ट्रेट' के रूप में बेरिंग सागर मौजूद है। हां, सरसरी तौर पर तो यही लगता है, लेकिन आज से कुछ हज़ार-लाख साल पहले तक साइबेरिया और अलास्का को जोड़ने वाला एक प्राकृतिक पुल होता था। इस पुल की मदद से ही एशिया महाद्वीप की विभिन्न प्राणी और वानस्पतिक प्रजातियां अमरीका पहुंची थीं। आज यह ज़मीनी पुल समुद्र की सतह ऊपर उठने के कारण 50 मीटर नीचे डूबा हुआ है। आदिम मानव भी शायद इसी पुल का इस्तेमाल कर अमरीका महाद्वीप पर पहुंचा था। यह ज़मीन-नुमा पुल समुद्र के जल स्तर में उतार-चढ़ाव के हिसाब से पृथ्वी के इतिहास में कई बार डूबा और कई बार बाहर आया है।

के कारण ही समुद्र के जल स्तर में परिवर्तन होते हैं। लेकिन इनमें से कोई भी कारण पूरी दुनिया के समुद्र के जल स्तर में 100 मीटर तक के उतार-चढ़ाव को नहीं समझा सका। इसलिए ऐसा कोई ठोस कारण चाहिए था जो काफी सवालों के जवाब दे सकता हो। धीरे-धीरे समझ में आया कि यह कारण था – धरती पर हिमयुग का आना और हिमयुग का समाप्त होना। हिमयुग यानी धरती के काफी बड़े हिस्से पर बर्फ की कई मीटर मोटी चादर का बिछ जाना।

आमतौर पर यह मान्यता है कि जब हिमयुग आता है तो समुद्री जल का काफी बड़ा हिस्सा बर्फ में तब्दील हो जाता है जिससे समुद्र का जल-स्तर नीचे चला जाता है। जब हिमयुग खत्म हो रहा होता है तब बर्फ के पिघलने से जो पानी समुद्र में आता है उससे समुद्र का जल-स्तर फिर से बढ़ता है।

लेकिन सवाल यह है कि यह कैसे पता चले कि किसी स्थान विशेष से समुद्र के जल-स्तर में परिवर्तन आया है या नहीं? कुछ सामान्य से अवलोकन हैं जिनकी मदद से इस परिवर्तन का पता लगाया जाता है। यदि कोई हिस्सा हज़ारों साल पहले समुद्र में डूबा हुआ था तो समुद्र अपने कुछ-न-कुछ निशान तो छोड़ ही जाएगा। मसलन कुछ समुद्री जीव-वनस्पतियों के जीवाश्म, पुराने समुद्री तट, समुद्री लहरों द्वारा बनाए गए कटाव के निशान वगैरह।

नदियों के वर्तमान डेल्टा क्षेत्र में बोर-होल (छेद) करके वहां गहराई में जाकर चट्टानों के नमूनों को लेकर यह पता किया जाता है कि किस समय की चट्टानों में मिलने वाले जीवाश्म ताज़े पानी में रहने वाले जीव-वनस्पति के हैं और किस समय की चट्टानों में खारे पानी में पाए जाने वाले जीव-वनस्पति के जीवाश्म मिलते हैं। इस जानकारी से यह पता चल जाता है कि जहां वे चट्टानें बनी थीं वह भाग समुद्र में डूबा था या नहीं।

नियोग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा

जब पहले-पहल यह कहा गया कि समुद्र सतह में उतार-चढ़ाव का प्रमुख कारण हिमयुग से जुड़ा है तो यह साबित करना काफी कठिन था। लेकिन बाद की खोजों से पता चला कि समुद्र में कुछ वनस्पतियां और फोरामिनिफेरा जैसे कुछ संवेदनशील सूक्ष्मजीव भी मौजूद हैं जो समुद्री पानी के तापमान में होने वाले परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हैं। अवलोकनों से यह तथ्य भी सामने आया कि उथले पानी में पाई जाने वाली फोरामिनिफेरा की ही एक प्रजाति नियोग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा (Neogloboquadrina

1

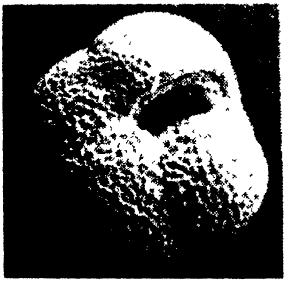

2

फोरामिनिफेरा – समुद्र में पाया जाने वाला एक सूक्ष्म जीव, जो समुद्री पानी के तापमान से प्रभावित हो जाता है। उत्तरी अटलांटिक सागर मे बोर-होल करके खोज करते समय फोरामिनिफेरा की नियो-ग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा प्रजाति के मिले जीवाश्मो से यह बात साफ हो गई कि हिमयुग के दौरान इस प्रजाति के कुछ भिन्न बनावट वाले कवच मिलते है। यहा चित्र-1 मे दिखाए गए फोरामिनिफेरा का संबध हिमयुग के बाद के गरम दौर से है। इसी तरह चित्र 2 मे दिखाया गया फोरामिनिफेरा उस समय का है जब धरती पर हिमयुग था।

Pachyderma) हिमयुग के दौरान (जब बर्फ का फैलाव हो रहा हो) अपनी सामान्य बनावट से थोड़ी भिन्न बनावट वाली मिलती है। सामान्य बनावट वाले फोरामिनिफेरा वहा पाए जाते है जहा समुद्री पानी खूब ठडा हो लेकिन बर्फ न हो। इसी प्रजाति के भिन्न बनावट वाले फोरामिनिफेरा वहां रहना पसंद करते है जहा पानी ठडा तो हो, पर साथ ही खूब सारी बर्फ भी फैली हो।

यदि समुद्र की तली से हजारों-लाखों साल पुरानी चट्टानो के नमूने लेकर उनमें फोरामिनिफेरा के जीवाश्मों की बनावट का अध्ययन किया जाए तो नियोग्लोबोक्वाड्रिना पेचिडर्मा के सामान्य बनावट वाले और भिन्न बनावट वाले फोरामिनिफेरा को देखकर यह अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है कि किस कालावधि में समुद्र की सतह पर बर्फ का फैलाव था और किस कालावधि में बर्फ नहीं थी।

रासायनिक साक्ष्य

समुद्री पानी के रासायनिक अध्ययनों से पता चला कि पानी मे ऑक्सीजन के सामान्य परमाणुओ (^{16}O) के साथ ^{17}O तथा ^{18}O नामक आइसोटोप* भी पाया जाता है। सामान्यत: समुद्री पानी में 99 7% ^{16}O के परमाणु, 0.2% ^{18}O तथा 0.04% ^{17}O पाया जाता है। समुद्री पानी में सामान्यत: ^{18}O और ^{16}O का एक निश्चित अनुपात 1.499

होता है। परन्तु कई कारकों की वजह से कई बार यह अनुपात बदल भी जाता है। जब समुद्री पानी का वाष्पीकरण होता है तो वाष्प में हल्के 16O परमाणु ज़्यादा होते हैं और इसलिए वाष्पीकरण के बाद बचे समुद्री पानी में भारी 18O परमाणु की मात्रा एक प्रतिशत तक पहुंच जाती है। यदि वाष्पीकरण के बाद बारिश जैसी क्रियाएं जल्दी हो जाएं तो समुद्र के पानी में ऑक्सीजन के सामान्य परमाणु और आइसोटोप्स का निश्चित अनुपात पुनः स्थापित हो जाता है। परन्तु वही जल वाष्प अगर बारिश के बजाए बर्फ बनने

* प्रकृति मे काफी सारे तत्वो के आइसोटोप पाए जाते है। आइसोटोप और उसके मूल तत्व मे मुख्य फर्क परमाणु भार का होता है। आइसोटोप और मूल तत्व मे इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉनो की संख्या तो समान होती है, लेकिन आइसोटोप मे न्यूट्रॉनो की संख्या ज्यादा होती है, जिसकी वजह से आइसोटोप भारी होते है।

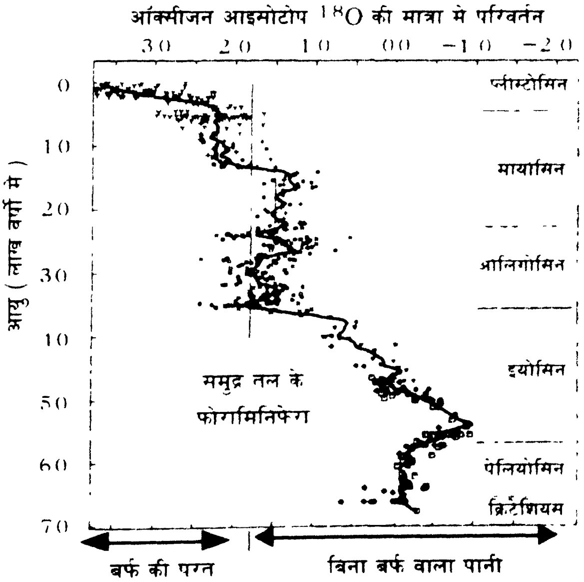

अटलांटिक महासागर मे किए गए बोर-होल से प्राप्त जानकारी के आधार पर पिछले 70 लाख साल मे तापमान के प्रति संवेदनशील फोरामिनिफेरा की प्रजाति मे आए परिवर्तन और ऑक्सीजन आइसोटोप की मात्रा मे आया परिवर्तन साफ तौर पर दिखाई दे रहे हैं। चित्र मे स्पष्ट होता है कि 55 लाख साल के आसपास तापमान मे गिरावट आने लगी। साथ ही गरम वातावरण में रह सकने वाले फोरामिनिफेरा मिलना भी बंद हो गए। ध्रुवीय इलाको मे कमोबेश यही स्थिति आज भी बनी हुई है।

लगे तो समुद्री पानी में ^{16}O:^{18}O का अनुपात गड़बड़ाने लगता है। यह बात तो हमारे आज के अध्ययन बताते हैं लेकिन हज़ारों-लाखों साल पहले समुद्री पानी में ^{16}O और ^{18}O के अनुपात में आए उतार-चढ़ाव को किस तरह पता किया जाए यह एक समस्या मुंह बाए खड़ी थी।

फारामिनिफेरा का कवच

ऐसी विकट परिस्थिति में फोरामिनिफेरा एक बार फिर हमारे काम आए। फोरामिनिफेरा के कवच (Shell) दुनिया भर की समुद्री चट्टानों में बहुतायत में पाए जाते हैं। इनकी मदद से चट्टानों की आयु तो तय की ही जाती है परन्तु इनके कवच में पाए जाने वाले कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) के विश्लेषण से उनमें ^{16}O और ^{18}O के अनुपात का पता लगाया जा सकता है। कैल्शियम कार्बोनेट का 'मास स्पेक्ट्रोस्कोप' के ज़रिए अध्ययन करते समय इसके ऑक्सीजन अणु वाले हिस्से को ध्यान से तौला गया तो काफी चौंकाने वाले परिणाम सामने आए। कुछ कालावधि के कवचों में तो ^{16}O और ^{18}O का सामान्य अनुपात दिखाई दिया लेकिन कुछ कालावधि के कवचों में ^{18}O की मात्रा ज़्यादा पाई गई। यानी इस खास समय में समुद्र का काफी सारा पानी बर्फ में तब्दील हुआ था जिसकी वजह से समुद्र के शेष पानी में ^{18}O का अनुपात ज़्यादा हो गया। इस तरह यह साबित किया जा सका कि कवचों में ^{18}O की मात्रा बढ़ने का अप्रत्यक्ष संबंध तापमान कम होने से है।

कारल राफ

इसी तरह समुद्री कोरल रीफ (प्रवाल भित्ती) ने भी समुद्र जल के उतार-चढ़ाव को समझने में काफी मदद की है। समुद्री कोरल लाखों की संख्या में समुद्र के भीतर किसी ज़मीनी हिस्से से चिपककर कैल्शियम कार्बोनेट से अपनी बस्ती को बनाते हुए लगातार ऊपर की ओर वृद्धि करते जाते हैं। जैसे ही यह बस्ती समुद्री सतह के करीब पहुंचती है, यह वृद्धि रुक जाती है। यदि समुद्र की सतह किन्हीं कारणों से ऊपर चढ़ती है तो कोरल की नई पीढ़ी बस्ती को बनाने का काम फिर शुरू कर देती है। इस तरह कोरल की नई पीढ़ियां पुरानी पीढ़ी के काम को आगे बढ़ाती रहती हैं। यह कोरल रीफ का सामान्य-सा नियम है।

पिछले अठारह हज़ार सालों के दौरान, पिछले हिमयुग की बर्फ पिघलने के कारण समुद्र के जल स्तर में आए परिवर्तन को बारबाडोस द्वीप (वेस्ट इंडीज़ द्वीप समूह) में कोरल रीफ की एक के ऊपर एक जमी हुई अलग-अलग पीढ़ियों की मदद से बखूबी समझा गया है। इस कोरल रीफ की

आयु निकालकर तथा दुनिया की दूसरी जगहों से मिली जानकारी के आधार पर हम कह सकते हैं कि:

- आज से 18 हज़ार से 12 हज़ार साल के बीच धरती पर तेज़ी से बर्फ पिघलने का सिलसिला शुरू हुआ।
- 12 हज़ार से 10 हज़ार साल के दौरान बर्फ पिघलने की रफ्तार कुछ धीमी रही।
- 10,000 से 8,500 साल के बीच यूरोप से बर्फ की चादर गायब हो गई।
- 6500 साल पहले उत्तरी अमरीका से भी बर्फ की चादर गायब हो गई।
- दस हज़ार साल पहले बर्फ पिघलने से समुद्री जल स्तर में हुई वृद्धि के बारे में एक मोटा अनुमान है कि यह वृद्धि उस समय 2.5 मीटर प्रति सौ साल रही होगी।

हिमयुग के मायने

इस लेख में कई बार हिमयुग का जिक्र किया गया है। बर्फ से धरती के बड़े हिस्से के ढकने को हिम युग कहते है। धरती पर समय-समय पर होने वाले जलवायु संबंधी परिवर्तनो के कारण अर्थात तापमान कम होने के कारण, धरती का एक बड़ा हिस्सा बर्फ के नीचे सालों दबा रह जाता है। (आज के दौर मे अंटार्कटिका, ग्रीन लैंड, उत्तरी ध्रुव प्रदेश, हिमालय-आल्प्स की कई चोटिया बर्फ की मोटी चादर के नीचे दबी हुई हैं, जो हमारी धरती के क्षेत्रफल का लगभग 12-15 प्रतिशत है।) और कुछ हज़ार सालों के बाद पृथ्वी का तापमान बढ़ने के कारण बर्फ के पिघलने का दौर शुरू हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि धरती पर अब तक ऐसे कई हिमयुग आ चुके हैं। वर्तमान दौर पिछले हिमयुग की बर्फ के पिघलने का दौर है।

हिमयुग क्यों आता है?

'हिमयुग क्यो आता है?' इस सवाल को लेकर अभी भी कोई तसल्लीबख्श जवाब नही मिला है। परन्तु अब तक के धरती के इतिहास में तापमान और हिमयुगो के अध्ययन से कुछ पैटर्न जरूर नज़र आते हैं। इस पैटर्न और पृथ्वी की विभिन्न गतियों के बीच एक कार्य-कारण संबंध भी दिखता है।

सन् 1941 मे यूगोस्लावियाई वैज्ञानिक मिलेन्कोविच ने धरती की विभिन्न गतियो की कालावधि की गणनाए कीं। साथ ही उसने यह भी पता लगाया कि इन गतियों के कारण पृथ्वी पर पहुंचने वाले सूर्य विकिरण की मात्रा पर क्या असर पड़ेगा। तत्पश्चात उसने पृथ्वी की तीन गतियों को इन प्रक्रियाओं के लिए ज़िम्मेदार ठहराया·

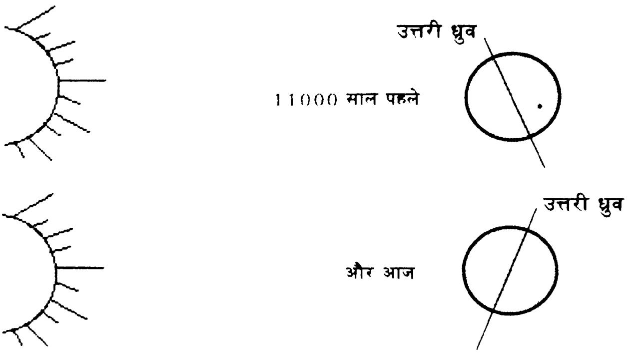
उत्तरी ध्रुव
11000 साल पहले
उत्तरी ध्रुव
और आज

1

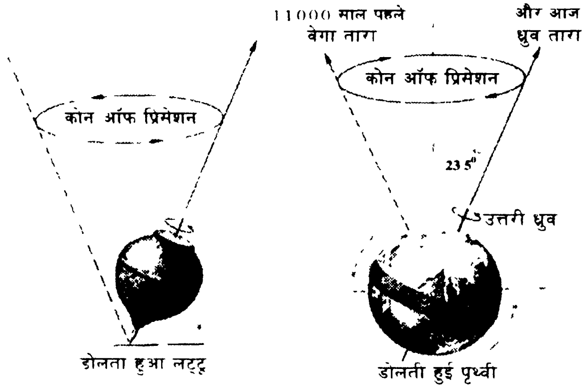
11000 साल पहले
वेगा तारा
और आज
ध्रुव तारा
कोन ऑफ प्रिमेशन
कोन ऑफ प्रिमेशन
23.5°
उत्तरी ध्रुव
डोलता हुआ लट्टू
डोलती हुई पृथ्वी

1B

23.5
उत्तरी ध्रुव
दक्षिणी ध्रुव

2

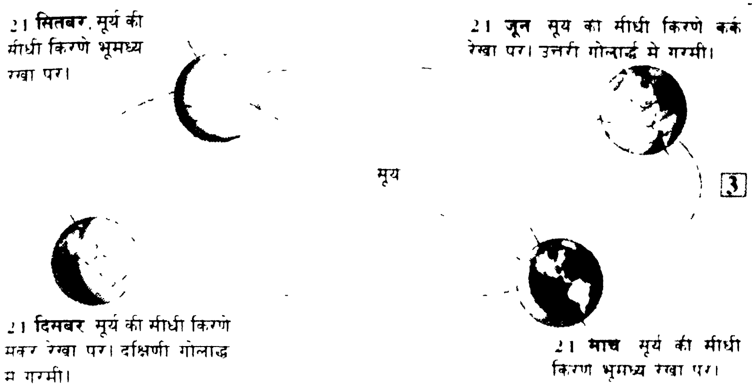

सामने वाले पेज पर बने चित्र पृथ्वी की विभिन्न चक्रीय गतियों से संबंधित हैं। पृथ्वी की इन गतियों और धरती पर हिमयुग के चक्रों के बीच पहली बार युगोस्लावियाई वैज्ञानिक मिलेन्कोविच ने एक संबंध प्रदर्शित किया था। **चित्र:1** पृथ्वी की 23,000 साल वाली चक्रीय गति दर्शाता है, जिसमें पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की 11000 साल पहले की और आज की स्थिति दिखाने का प्रयास किया गया है। **चित्र:1B** पृथ्वी के डोलने की तुलना लट्टू के साथ करते हुए यह दिखाने की कोशिश की है कि किस तरह 'कोन ऑफ प्रिसेशन' बदलता है। इसी चित्र में अभी के ध्रुव तारे के साथ-साथ 11 हजार साल पहले पृथ्वी की धुरी के ठीक ऊपर स्थित 'वेगा' तारे की दिशा भी दिखाई गई है। **चित्र:2** आज की स्थिति में पृथ्वी का अक्षीय झुकाव 23.5 डिग्री है। परन्तु पृथ्वी का यह झुकाव 21.5 डिग्री से 24.5 डिग्री के बीच खिसकता रहता है और 10,000 साल में 21.5 से 24.5 होते हुए वापस 21.5 डिग्री पर आ जाता है। **चित्र:3** पृथ्वी सूर्य का चक्कर एक दीर्घ वृत्ताकार कक्ष में लगाती है। इस कक्ष का निकटतम बिन्दु 14.71 करोड़ कि.मी. दूर है और दूरस्थ बिन्दु 15.2 करोड़ कि.मी. की दूरी पर है। परन्तु ये दूरियां स्थिर नहीं रहतीं और एक नियत क्रम में 1,00,000 साल के चक्र के दौरान बदलती रहती हैं। इस चित्र में आज की स्थिति दर्शाई गई है।

– पृथ्वी सूर्य का चक्कर एक दीर्घ वृत्ताकार पथ (Elliptical Orbit) पर घूमते हुए पूरा करती है। सूर्य और चांद के गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते हुए अपनी धुरी पर झूलती है। जैसे तेज़ी से घूमता हुआ लट्टू घूमने के साथ-साथ डोलता है। डोलने का एक चक्र पृथ्वी लगभग 23,000 साल में पूरा करती है।

इसके असर को इस तरह समझा जा सकता है कि आज जनवरी में पृथ्वी का दक्षिणी गोलार्द्ध सूर्य की तरफ झुका होता है और उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य से परे होता है। परन्तु आज से ग्यारह हजार साल पहले जनवरी में उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य की तरफ झुका होता था – यानी आज से एकदम विपरीत स्थिति थी। और अगले ग्यारह

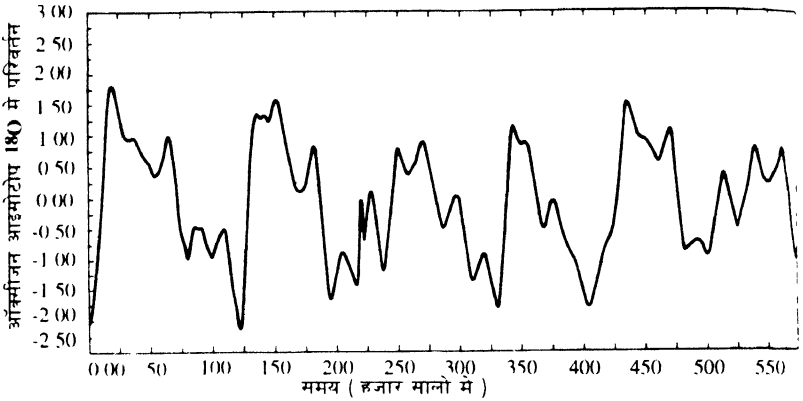

इस ग्राफ में फोरामिनिफेरा के कवचों में ^{18}O की मात्रा में आए परिवर्तन को मुख्य आधार बनाते हुए पिछले 6 लाख सालों के दौरान आए छह प्रमुख हिमयुग दिखाए गए हैं। जब-जब ^{18}O का धनात्मक मान सबसे अधिक होता है, धरती पर हिमयुग होता है, जब ^{18}O का मान कम हो जाता है, वह दौर बर्फ पिघलने का दौर होता है, जिसे इंटर ग्लेशियल पीरियड कहते हैं। ग्राफ को ध्यान से देखने पर हिमयुगों के बीच एक लाख साल का चक्रीय क्रम स्पष्ट नज़र आता है।

हज़ार साल बाद फिर से वैसी ही विपरीत स्थिति आ जाएगी। यानी यह चक्र तकरीबन 23000 साल में पूरा होता है।

– पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द दीर्घ वृत्ताकार पथ में चक्कर लगाती है परन्तु इस दीर्घ वृत्त का आकार (Shape) सदैव एक-सा नहीं रहता। लगभग 90,000 साल में आकार में बदलाव का एक चक्र पूरा होता है।*

– एक और कारण है – पृथ्वी के अक्षीय झुकाव में होने वाला परिवर्तन। अभी पृथ्वी का अक्षीय झुकाव 23.5 डिग्री है। लेकिन यह झुकाव 40,000 साल की कालावधि में 21.5 डिग्री से 24.5 डिग्री के बीच परिवर्तित होकर वापस 21.5 डिग्री हो जाता है। इसकी वजह से पृथ्वी की कर्क रेखा और मकर रेखा की स्थिति खिसकती रहती है। जब झुकाव अधिकतम होता है तो किसी भी जगह पर वर्ष भर के दौरान तापमान में अंतर भी अधिक हो जाता है; और जब झुकाव न्यूनतम होता है तो यह फर्क कम हो जाता है।

मिलेन्कोविच द्वारा बताए तीनों कारणों की जब जांच की गई तो यह

** अपने दीर्घ वृत्ताकार कक्ष में पृथ्वी 3 जनवरी को सूर्य के निकटतम और 1 जुलाई को सबसे अधिक दूरी पर होती है।*

समझ में आया कि इन तीनों लम्बी अवधि के नियमित परिवर्तनों का धरती पर आने वाले हिमयुग से कोई-न-कोई संबंध तो ज़रूर है। पृथ्वी के पिछले आठ लाख साल के इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन बताता है कि इस दौरान धरती के तापमान के बदलावों में बीस हजार, चालीस हजार और एक लाख साल की नियमितता है। इससे यह तर्क काफी पुख्ता होता है कि धरती की विभिन्न गतियो के चक्रों और तापमान बदलाव मे कार्य-कारण संबंध ज़रूर है। लेकिन किस्सा यहीं खत्म नही हो जाता क्योंकि इस परिकल्पना की तुलना जब अध्ययनो मे प्राप्त तथ्यो से करते है तो तीन प्रमुख समस्याए सामने खडी हो जाती है

1 हिमयुग और हिमयुगो के बीच के अंतराल के तापमान मे औसतन 1 से 5 डिग्री सेल्सियस का अतर होता है। जबकि पृथ्वी की गतियों की वजह से कुल मिलाकर पृथ्वी के तापमान पर आधे डिग्री से ज्यादा का अतर नहीं पड सकता।

2 पृथ्वी के तापमान के इतिहास में कभी 40,000 साल वाला चक्र प्रभावी दिखता है तो कभी एक लाख साल वाला; जबकि पृथ्वी की गतिया तो निरंतर बनी हुई हैं।

3 इससे यह समझ मे नहीं आता कि पिछले 20-30 लाख सालों के दौरान हिमयुगों की तीव्रता क्यों बढ़ती गई।

फिर भी पृथ्वी में कुछ ऐसा ज़रूर है जो इन छोटे-छोटे परिवर्तनो को खूब बड़े पैमाने के मौसमी परिवर्तनों मे बदल देता है।

पिछले कुछ सालों में यह अहसास बना है कि पृथ्वी पर ऊर्जा के शोषण और ऊर्जा के परावर्तन को प्रभावित करने वाले कुछ और भी कारक हैं, जैसे

– धरती पर घुमक्कड महाद्वीपो का अपनी जगह बदलते रहना।
– धरती पर बनने वाले नए पहाड-पठार और महाद्वीपो के उठाव।
– इसके अलावा वायुमडल मे ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा मे घट-बढ़।
– वक्त-बेवक्त ज्वालामुखी फूटने से वायु मडल मे धूल, गैसो आदि का फैलना।
– पृथ्वी पर बर्फ की परत फैलने से ऊर्जा का परावर्तन बढ़ना और इससे तापमान मे गिरावट आना।

अभी भी पूरी तरह हम यह नही जान पाए है कि धरती मे ऐसा क्या है जो कभी-कभी धरती को बर्फ की एक विशाल चादर से ढाक देता है। फिर इतना गर्म कर देता है कि समुद्र का जल स्तर कई मीटर बढ़ जाए। ऐसा क्या है जो इस चक्र को लगातार चलाए रखता है। आशा है प्रकृति के इस खेल को हम आज नहीं तो कल ज़रूर समझ सकेंगे।

माधव केलकर संदर्भ से संबद्ध है।

ज़रा सिर तो खुजलाइए

पिछली बार पेश की गई उलझन और उसका जवाब:

$$-1 = +1 \ ?$$

हम जानते हैं कि

$$\sqrt{a} \times \sqrt{b} = \sqrt{ab}$$

$$\sqrt{-1} \times \sqrt{-1} = \sqrt{-1 \times -1}$$

$$\sqrt{(-1)^2} = \sqrt{1}$$

अर्थात

$$-1 = +1$$

क्या यह संभव है?

बस यही सवाल पूछा गया था पिछली बार। सवाल में हुई चूक और हल की ओर इंगित करता हुआ खत दिलीप झा ने लिखा है। प्रस्तुत है उनका खत;

"इस उलझन में दूसरे पद में ही संभवत: मुद्रण की त्रुटि दिखती है। इसे होना चाहिए

$$\sqrt{-1} \times \sqrt{-1} = \sqrt{-1 \times -1}$$

अर्थात वर्गमूल का चिन्ह दायें भाग में दोनो (-1) के ऊपर होना चाहिए था। पुन: तीसरे पद में दायां पद तो स्पष्ट होता है कि $\sqrt{-1 \times -1} = \sqrt{1}$; लेकिन बायीं ओर कैसे केवल $\sqrt{-1}$ रह गया समझ नहीं आया।

खैर अब $\sqrt{(-1)} = \sqrt{1}$ मान भी लें तो चौथा पद प्राप्त करने के लिए वर्गमूल लेने की बजाए दोनों पक्षों का वर्ग करना होगा तभी हमें -1 = +1 प्राप्त हो सकेगा। इस तरह तो पूरे प्रश्न में ही गलती नज़र आती है।

दिलीप झा, शिक्षक
आरंग, रायपुर (म प्र)

इस गुत्थी में सारी कलाबाजी '$\sqrt{\ }$' चिन्ह की है। जैसे कि $\sqrt{4} = 2$ है, लेकिन अगर कोई $\sqrt{4} = -2$ भी लिखे तो इसे भी मान्य करना होगा क्योंकि $(-2) \times (-2)$ बराबर भी 4 है। लेकिन इस का अर्थ यह नहीं है कि $2 = -2$ है।

सही विधान है $\sqrt{4} = \pm 2$; अर्थात वर्गमूल के दो उत्तर हैं जिनको ऋण और धन दोनों चिन्हों द्वारा दर्शाया जाता है।

म. ह पाटिल; ऊ. अ. याज्ञिक
मुंबई, महाराष्ट्र

सही जवाब इन्होंने भी भेजे: शिवबीर सिंह, देवास; निर्मल डबकरा, रामपुरा, म. प्र

नई उलझन

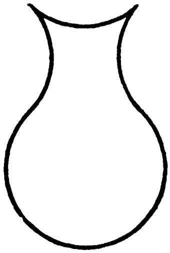

कटा जग, बना वर्ग

आपको थोड़ा काटा पीटी करनी पड़ेगी इसलिए बेहतर होगा कि ऊपर दिए गए जग के चित्र को कागज़ पर उतार लें।

बस आपको इतना करना है कि इस जग को दो जगह से सीधा काटिए; अब कटे हुए तीनों हिस्सों को इस तरह जमाइए कि एक वर्ग बन जाए। यानी कि आपके द्वारा लगाए गए सीधे कट इस बात पर निर्भर करेंगे कि बनने वाले हिस्सों से वर्ग बन रहा है कि नहीं। अगर वर्ग बन जाए तो कागज़ पर चिपका कर हमें भेज दीजिए, इस पते पर – संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद 461 001.

जादुई तालाब की पहेली

हजामत बनाते हुए पुश्तैनी नाई ने एक साधारण-सी पहेली पूछी थी। परन्तु, देखिए क्या-क्या समझ सकते हैं एक अदनी-सी पहेली के ज़रिए, अगर उसकी गहराइयों में जाने की कोशिश करें।

विजय शंकर वर्मा

छुट्टियों के दौरान मैं अपने घर पटना गया हुआ था। एक सुबह हमारा पुश्तैनी नाई गांव से आ पहुंचा। फिर क्या था परिवार के सारे पुरुषों को बाल कटवाने के लिए लाइन लगानी पड़ी। पिछली बार जब मैं उससे मिला था मैं स्नातक की कक्षाओं में पढ़ रहा था; यह बात करीब बीस साल पहले की होगी। यानी जब वो बाल काट रहा था तो हमारे पास बहुत कुछ था बतियाने को। वो जानना चाहता था कि मैं क्या करता हूं अपनी जीविका चलाने के लिए।

उसे यह जानकर काफी अच्छा लगा कि मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ा रहा हूं; पर वो जानना चाहता था कि मैं क्या पढ़ाता हूं वहां। जब मुझे यह समझाना मुश्किल लगा कि भौतिक शास्त्र क्या है, तो मैंने उससे कहा कि मैं 'हिसाब' पढ़ाता हूं यानी कि ऐसा कुछ जिसमें गणनाएं होती हैं। यह सुनकर वह खुश हो गया और शरारत भरी मुस्कुराहट के साथ उसने कहा, "ऐसा है, तो फिर तुम इसका हल ढूंढ ही लोगे।" और उसने ये पहेली मेरे सामने पेश कर दी।

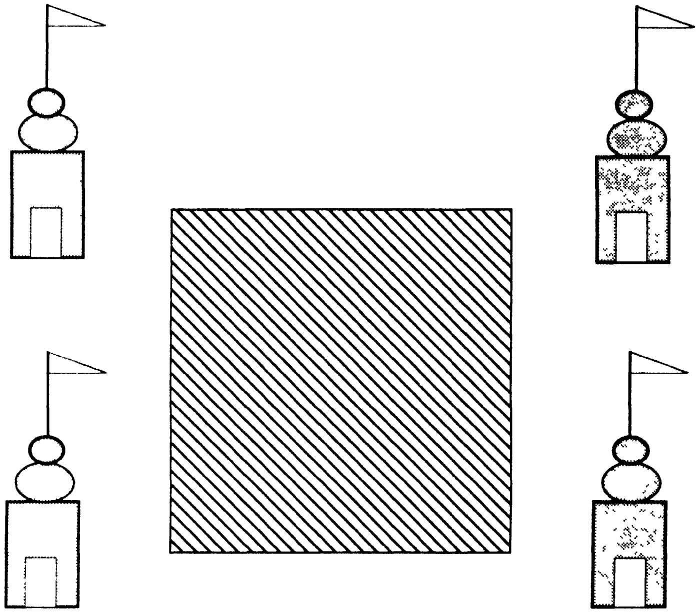

"गांव के बाहर एक तालाब है जिसका पानी जादुई है। यह तालाब वर्गाकार है और उसके हर कोने पर अलग-अलग देवताओं के मंदिर बने हुए हैं। जादुई पानी की वजह से, पानी से धोने पर फूलों की संख्या दुगनी हो जाती है और पूजारी उसमें से कुछ फूल पहले देवता को चढ़ा देता है। शेष फूलों को, क्योंकि वो बचे हुए हैं – एक तरह से जूठे हैं, इसलिए उन्हें फिर से तालाब में धोता है। उनकी संख्या फिर से दुगनी हो जाती है। फिर वो दूसरे देवता को उतने ही फूल चढ़ाता है जितने उसने पहले देवता को चढ़ाए थे – ताकि उन्हें बुरा न लग जाए क्योंकि सब देवता एक-दूसरे से अत्यंत ईर्ष्या करते हैं। बचे हुए फूल फिर से धोता है, और वे फिर दुगने हो जाते हैं। तीसरे देवता के साथ भी वो वही करता है जैसा पहले दो के साथ किया था और फिर चौथे देवता के साथ। अंत में बिल्कुल भी फूल नहीं बचते। मेरे दोस्त, पुजारी ने कितने फूल तोड़े और कितने-

कितने हर देवता को चढ़ाए।"

जब वो हजामत कर रहा था तो मैंने हल सोचने की कोशिश की पर असफल रहा। फिर जब मैंने परेशान होते हुए कागज़ और पेंसिल निकालकर जवाब ढूंढने की कोशिश की तो वो मुस्कुरा रहा था। पहेली बहुत मुश्किल नहीं थी और जब मैंने उसे जवाब बताया तो वो ज़ोर से हंस दिया। वो खुश था कि उसने मुझे ऐसी पहेली बुझाई कि मुझे भी मेहनत करनी पड़ी, और साथ ही इसलिए भी खुश था कि उसके गांव का यह लड़का, जो अब 'यूनिवर्सिटी' में मास्टर बन गया था, उसकी परीक्षा में खरा उतरा था।

मेरा सुझाव है कि इस लेख को यहीं छोड़कर, और आगे पढ़ने से पहले, आप भी इस पहेली को हल करने की कोशिश करें। मेरा वायदा है कि आपके लिए भी ये अनुभव काफी मज़ेदार रहेगा।

पारंपरिक गणितीय तरीका

इस पहेली को हल करने के बहुत से तरीके हैं और मैं शुरुआत में उनमें से जवाब देने का सबसे ज़्यादा घिसा-पिटा तरीका बताऊंगा – जिस तरीके से मैंने उस दिन इसे हल किया था। इसमें सबसे पहले उचित समीकरण लिख लिया जाता है और फिर उसका हल ढूंढा जाता है। हम मान लेते हैं कि 'x' वह संख्या है जितने फूल पुजारी ने तोड़े थे और 'y' फूल उसने हर देवता को चढ़ाए। चूंकि हर बार धोने पर फूलों की संख्या दुगनी हो जाती है, पहली बार देवता को चढ़ावा देने के पश्चात $(2x-y)$ फूल बचेंगे। फिर से पानी में डुबाने पर फूल दुगने हो जाते हैं इसलिए दूसरे चढ़ावे के बाद $2(2x-y)-y$ फूल शेष रहेंगे। ऐसा ही दो बार और होता है और अंत में एक भी फूल नहीं बचता, इसलिए अंतिम समीकरण इस तरह होगी:

$$2(2(2(2x - y) -y) -y) -y = 0$$

हमें इस समीकरण का हल ढूंढना है। इसे सरल रूप देने पर:

$$16x - 8y - 4y - 2y - y = 0$$

अथवा $16x - (1+2+4+8)y = 0$

यानी कि $16x - 15y = 0$

चूंकि एक ही समीकरण से हमें दो अनजानी मात्राओं का पत लगाना है इसलिए इस समीकरण का केवल एक हल नहीं हो सकता साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि इसका पूर्णांक हल ही संभव है क्योंकि पहेली फूलों की संख्या पर आधारित है जो अपूर्णांक नहीं हो सकती।

इसलिए इस समीकरण का सामान्य हल इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$x = 15j, \quad y = 16j\ ;$ जहां $j = 1, 2, 3, \ldots$

इसलिए सबसे पहला संभव जवाब $x = 15$, $y = 16$ होगा; यानी कि पूजारी ने 15 फूल तोड़े और हर देवता को 16 फूल चढ़ाए।

कुछ साल पहले के इस अनुभव के बाद मैंने ये पहेली बहुत से लोगों से पूछी है; उनमें से कुछ-एक ने तो जवाब ढूंढने में घंटों लगा दिए, जबकि कई लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पहेली सुनते ही हल बता दिया। इससे स्पष्ट है कि अलग-अलग लोग जवाब ढूंढने के लिए अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। यहां मैं आपको इस पहेली को हल करने के कुछ ऐसे तरीके दिखा रहा हूं जिनमें बीजगणित के इस्तेमाल की ज़रूरत नहीं है।

समझ-बूझकर तुक्का लगाना

किसी भी सवाल को हल करने के लिए तुक्का तो लगाया ही जा सकता है। परन्तु ऐसे ही अंधेरे में तीर चला देना अक्सर ज़्यादा सार्थक नहीं होता है। और मान लीजिए अगर अंदाज़ लगाना ही है तो पहेली के महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में सोचते हुए कुछ कहना कहीं बेहतर होता है।

1. इस सवाल में सबसे पहली गौर करने लायक बात यह है कि पूजारी जितने फूल का चढ़ावा देता है वह संख्या सम होगी। ऐसा इसलिए ज़रूरी है क्योंकि हर बार देवता को चढ़ाने से पहले फूल पानी में डुबोए जाते हैं, हर बार बराबर संख्या में फूल चढ़ाए जाते हैं और अंतिम बार फूल चढ़ाने के बाद कुछ भी शेष

नहीं रहता। इसका अर्थ यह हुआ कि 'y' राशि सम संख्या होगी।

2. पुजारी ने जितने फूल तोड़े उनकी संख्या 'x', जितने फूल उसने चढ़ाए उससे कम हो यह ज़रूरी है, नहीं तो हर बार चढ़ावे के बाद फूलों की संख्या बढ़ती ही जाएगी। यानी कि अगर ऐसा नहीं हुआ तो पहले देवता के चढ़ावे के बाद बचे फूलों की संख्या (2x-y) शुरुआत में तोड़े फूलों की संख्या 'x' से ज़्यादा हो जाएगी।

3. पहली बार तोड़े फूलों की संख्या (x), जितने फूल चढ़ाए जाते हैं उससे आधी या आधे से ज़्यादा होना ज़रूरी है नहीं तो पहली बार चढ़ाने के लिए भी पर्याप्त फूल नहीं होंगे।

4. अंत में, हमें छोटी संख्याओं से शुरू करना होगा ताकि छोटे से छोटे पूर्णांक हल ढूंढे जा सकें।

इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए हम इस संभावना से शुरुआत कर सकते हैं: x = 1, y = 2. हालांकि तुरन्त समझ में आ जाता है कि यह सही हल नहीं है, फिर भी इन संख्याओं को देखकर एक बात तो दिमाग में ज़रूर कौंधती है कि अगर चढ़ावा देने के लिए चार के बजाए एक ही देवता होता तो हल यही था। .

चूंकि ज़रूरी है कि 'y' सम संख्या हो इसलिए अगला संभव जवाब y = 4 एवं x = 2 अथवा 3 हो सकता है। x = 2 और y = 4 तो पिछले हल का दुगना भर है, इसलिए उसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। x = 3, y = 4 भी हमारी पहेली का हल नहीं है, परन्तु यहां भी स्पष्ट है कि अगर दो ही देवता होते तो यह हल एकदम फिट बैठ जाता।

इतना सोच लेने के बाद एक पैटर्न उभरता दिखता है – जैसे जैसे देवताओं की संख्या बढ़ती जाती है, 'y' दुगना हो रहा है और 'x' का मान उससे एक कम है। इसका अर्थ निकलता है कि अगर तीन देवता हों तो पहेली का हल होना चाहिए : y = 8, x = 7. तीन देवताओं पर आजमाने पर यह जवाब सही निकलता है। अब तो पक्का है कि क्योंकि हमारे सवाल में चार देवता हैं इसलिए हल यही होगा: y = 16, x = 15

सिद्धांत का सामान्यीकरण

इस तरह सोच-समझकर अंदाज़ लगाते हुए हमने न केवल पहेली का सही हल बूझ लिया, बल्कि हम एक सामान्य सिद्धांत की तरफ बढ़ सकते हैं कि अगर तालाब की भुजाओं की संख्या 'N' हो जिसके किनारों पर उतने ही देवताओं के मंदिर बने हुए हों तो पहेली का हल कुछ इस प्रकार होगा:

$y = 2^N$ एवं $x = 2^N - 1$

इसी तरीके का इस्तेमाल करते हुए हम सामान्यीकरण की प्रक्रिया को और भी आगे बढ़ा सकते हैं कि अगर तालाब के पानी में धोने से फूलों की संख्या दुगनी होने के बजाए 'n' गुनी हो जाए तो हल क्या होगा?

इसका जवाब ढूंढने के लिए हमें शुरुआती समीकरण को देखना होगा जिसमें $N = 4$ था और $n = 2$ यानी कि देवता चार थे और पानी से धोने पर फूल दुगने हो जाते थे। उस समय हमने यह समीकरण लिखी थी:

$$16x - (1+2+4+8)y = 0$$

हम इस समीकरण को इस तरह भी लिख सकते हैं:

$$2^4 x - (1+2+2^2+2^3)y = 0$$

अब अगर देवताओं की संख्या चार के बजाए 'N' हो तो इस समीकरण का सामान्य स्वरूप कुछ ऐसा होगा:

$$2^N x - (1+2+2^2+2^3+ \ldots +2^{N-1})y = 0$$

यहां पर थोड़े से कठिन गणित की ज़रूरत होगी। कोष्ठक के अंदर की संख्या 'N' राशियों वाली एक गुणोत्तर श्रेणी (ज्योमेट्रिक शृंखला) है जिसमें सभी राशियों के बीच 2 का अनुपात है। इस तरह की शृंखला का जोड़ इस प्रकार भी लिखा जा सकता है:

$$1+2+2^2+2^3+ \ldots +2^{N-1} = (2^N - 1)/(2-1)$$

कोष्ठक की राशि का मान रखने के पश्चात पहले वाला समीकरण इस प्रकार होगा:

$$2^N x - (2^N-1)y/(2-1) = 0$$

इस समीकरण का सबसे छोटा पूर्णांक हल अब पहले की तरह निकाला जा सकता है:

$x = (2^N-1) / (2-1)$ और $y = 2^N$

समीकरण के नीचे वाले हिस्से को हमने सरल बनाकर 'एक' जानबूझ कर नहीं लिखा है, क्योंकि अब हम समीकरण के सामान्यीकरण का अगला कदम उठाने वाले हैं कि अगर हर बार फूलों की संख्या दुगनी होने के बजाए 'n' गुनी हो जाए तो ऐसी स्थिति में हमें इस समीकरण में हर जगह '2' के स्थान पर 'n' लिखना होगा:

$x = (n^N - 1) / (n - 1)$ और $y = n^N$

यही होगा पहेली का हल अगर देवताओं की संख्या 'N' हो और हर बार तालाब के जादुई पानी में फूलों की संख्या 'n' गुनी होती जाए। यहां पर भी हमने वही माना है कि पुजारी ने 'x' फूल तोड़े हैं और 'y' फूल हर बार देवता को चढ़ाए। हल पर विश्वास न हो तो आप खुद एक बार आज़माकर ज़रूर देख लीजिए।

हल द्विअंकीय पद्धति से

एक बार फिर उसी पहेली से शुरू करते हैं – चार देवता और जादुई पानी जो फूलों की संख्या दुगनी कर देता है। इस बार देखते हैं कि द्विअंकीय पद्धति का इस्तेमाल करते हुए इस पहेली को कैसे हल किया जा सकता है। जो तरीका अपनाने वाले हैं वो समझ में आ जाए इसलिए सबसे पहले द्विअंकीय पद्धति और दशमलव पद्धति के बीच के संबंध को समझ लेते हैं।

जबकि दशमलव पद्धति में अंकों को दर्शाने के लिए 10 अलग-अलग संकेत होते हैं, द्विअंकीय पद्धति में केवल दो ही संकेत पर्याप्त होते हैं – 0 और 1. जब हम दशमलव पद्धति में कोई अंक लिखते हैं तो पहले स्थान का मान $10^0 = 1$ होता है, दूसरे स्थान का मान $10^1 = 10$ होता है, तीसरे स्थान का मान $10^2 = 100$, चौथे का $10^3 = 1000$, और इसी तरह आगे भी।

इस की तुलना में द्विअंकीय पद्धति में स्थानीय मान इस प्रकार

होते हैं: $2^0 = 1$, $2^1 = 2$, $2^2 = 4$, $2^3 = 8$, . . . ऐसे ही आगे भी। इसलिए द्विअंकीय पद्धति में अंक एक, दो, तीन, चार, पांच, छ, सात, आठ, नौ, . . . इत्यादि को क्रमशः इस प्रकार लिखा जाता है: 0, 1, 10 (द्वि), 11 (द्वि), 100 (द्वि), 101 (द्वि), 110 (द्वि), 111 (द्वि), 1000 (द्वि), 1001(द्वि), . . . आगे भी यह दर्शाने के लिए कि हम कौन-सी पद्धति अपना रहे हैं, हम यही तरीका इस्तेमाल करेंगे; जब भी अंक द्विअंकीय पद्धति में लिखे गए हों तो कोष्ठक में 'द्वि' (द्वि) लिखेंगे।

इसलिए आठ को या तो 8 लिखा जाएगा, या फिर 1000 (द्वि)। द्विअंकीय पद्धति में भी चारों गणितीय क्रियाएं उसी तरह से की जाती हैं जैसे कि दशमलव पद्धति में, फर्क केवल इतना ही होता है कि द्विअंकीय पद्धति में 2 हो जाने पर हासिल ले जाना होता है, जबकि दशमलव पद्धति में 10 होने पर ही हम हासिल लेकर जाते हैं। एक और फर्क है कि दशमलव पद्धति में 10 से गुणा करने पर हम संख्या के दाहिनी तरफ एक शून्य जोड़ देते हैं, द्विअंकीय पद्धति में किसी भी संख्या को 2 से गुणा करने पर ऐसा करना होगा।

द्विअंकीय पद्धति से इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात अब हम तालिका-1 देख सकते हैं जिसमें दशमलव और द्विअंकीय, दोनों पद्धतियों में इस पहेली के उत्तर लिखे गए हैं। इस तालिका में चार स्थितियों पर गौर किया गया है, अगर पहेली में देवताओं की संख्या एक हो, दो हो, तीन हो या चार हो तो जवाब क्या होंगे। हर स्थिति में जादुई पानी फूलों को दुगना कर देता है।

तालिका- 1

देवताओं की संख्या बदलने पर पहेली के हल

देवताओं की संख्या	दशमलव में		द्विअंकीय में	
	फूल तोड़े	फूल चढ़ाए	फूल तोड़े	फूल चढ़ाए
1	1	2	1	10
2	3	4	11	100
3	7	8	111	1000
4	15	16	1111	10000

द्विअंकीय पद्धति में हल देखें। जितनी भी देवताओं की संख्या है जिनको चढ़ावा चढ़ाना है, उतनी बार 1 लिखने से तोड़े गए फूलों की संख्या मिल जाती है; और देवता को चढ़ाए गए फूलों की संख्या पता करने के लिए 1 के बाद उतनी बार शून्य लगाने पड़ते हैं।

केवल एक देवता वाली पहेली का हल देखें। 1 फूल तोड़ा जाता है जो पानी में धोने पर दो यानी कि 10 (द्वि) में बदल जाता है और उन्हें देवता को चढ़ा दिया जाता है।

अगर पहेली में दो देवता हों तो तीन फूल तोड़े जाते हैं यानी कि 11 (द्वि) जो धोने पर 6 यानी कि 110 (द्वि) फूलों में तब्दील हो जाते हैं। इनमें से चार यानी 100 (द्वि) फूल पहले देवता को चढ़ाने पर दो यानी 10 (द्वि) फूल बचे जो पानी से धोने पर चार यानी 100 (द्वि) में बदल गए, उतने ही जितने दूसरे देवता को चढ़ाने के लिए चाहिए थे।

हर बार जब फूलों को पानी में धोने और एक देवता को चढ़ा देने का चक्र पूरा होता है, बचे हुए फूलों की संख्या में सबसे दाहिनी ओर का 'एक' 'शून्य' में बदल जाता है। पहेली में जितने देवता हों उतनी बार 'एक' 'शून्य' में बदलते जाते हैं।

द्विअंकीय जवाब में तोड़े हुए और चढ़ाए गए फूलों की संख्याएं इतने सरल रूप में इसलिए आती हैं क्योंकि हर बार पानी में डुबाने पर फूलों की संख्या दुगनी हो जाती है, वैसे ही जैसे कोई भी द्विअंकीय संख्या दाहिनी ओर अंत में शून्य लगाने पर दुगनी हो जाती है। अब सवाल यह उठता है कि दशमलव पद्धति में भी क्या जवाब ऐसे सरल रूप में सामने आएंगे अगर पानी में ऐसा जादू हो कि उसमें धोने पर फूलों की संख्या दस गुनी हो जाए?

अगर पहेली में एक ही देवता है तो चलिए जांच करते हैं कि इसमें भी जवाब 1 और 10 होगा क्या। याद रखिए कि यहां पर अब अंकों को दशमलव पद्धति में दर्शाया जा रहा है, और पानी फूलों को दस गुना कर देता है। एक फूल तोड़ा, जादुई पानी ने उसे 10 फूलों में बदल दिया। इन 10 फूलों को देवता को चढ़ा दिया। अभी तो सरल जवाब मिल रहा है। अब देवताओं की संख्या बढ़ा कर देखते हैं।

अगर दो देवता हैं तो जवाब 11 और 100 होना चाहिए। तोड़े हुए 11 फूलों को धोने पर उनकी संख्या दस गुनी यानी कि 110 हो जाएगी; और इनमें से जब पहले देवता को 100 फूल चढ़ा दिए जाते हैं तो 10 फूल शेष रहते हैं। धोने पर ये फूल दस गुना अर्थात 100 बन जाते हैं जिन्हें दूसरे देवता को चढ़ा दिया जाता है।

ऐसे और भी आगे बढ़ते जाने पर समझ में आता है कि हमारा अंदाज़ा सही निकल रहा है। देखिए अब हम इस पहेली के एक अचंभित कर देने वाले सामान्यीकरण की तरफ बढ़ गए हैं। अगर देवताओं की संख्या 'N' हो और जादुई पानी फूलों को 'n' गुना बना देता हो तो पहेली का हल यानी:

तोड़े हुए फूलों की संख्या x = 111. . . 1 (n) होगी

और देवता को चढ़ाए गए फूलों की संख्या y = 100. . . (n) होगी।

यहां पर 'x' संख्या में 'N' बार 1 आएगा और 'y' संख्या में 1 के बाद 'N' शून्य आएंगे। और इन अंकों को n-अंकीय पद्धति में पढ़ना होगा; यानी कि फूल दुगने हो रहे हैं तो द्विअंकीय पद्धति में, तिगुने हो रहे हैं तो त्रिअंकीय पद्धति में, . . . और दस गुने हो रहे हैं तो दशमलव पद्धति में।

बिहार-तमिलनाडु की पहेलियों में समानता क्यों

हम उस पहेली से बहुत दूर निकल आए हैं जो हमारे गांव के पुश्तैनी नाई ने पूछी थी। यह सब कुछ यह बताने के लिए लिखा कि बहुत से रास्ते एक ही मंज़िल तक पहुंच सकते हैं; और अक्सर हर रास्ते की अपनी खूबियां होती हैं, दिलचस्प नज़ारे होते हैं। इसीलिए गणित की कक्षा में हमें कोशिश करनी चाहिए कि बच्चे एक ही सवाल को तरह-तरह से हल करने की कोशिश करें, उन्हें इस बात के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित करना चाहिए। यही नहीं, यह देखते हुए कि पहेलियों और बुझावतों में हम सब कितना रस लेते हैं, कितना समय लगाते हैं उन्हें हल करने में, और कितनी कोशिश करते हैं; मुझे सदा ताज्जुब होता है कि कक्षा में गणित पढ़ाने के लिए उनका इस्तेमाल क्यों नहीं किया जाता।

एक और कारण है जिस वजह से मैंने ये लेख लिखना तय किया,

हाल ही में मैंने एक पुस्तक में तमिलनाडु की यह पहेली पढ़ी:

"बाज़ार जाते समय एक तेल का व्यापारी विनायक मंदिर के सामने से गुज़रा और उसने यह मन्नत मानी कि अगर उसकी बिक्री अच्छी हुई तो वह कुछ तेल चढ़ावे में देगा। उसने इसी तरह की मन्नत देवी और अय्यनार के मंदिरों पर भी की। काफी सफल बिक्री के पश्चात घर लौटते हुए वो चढ़ावा चढ़ाने से पहले स्नान करने के लिए अय्यनार के मंदिर पर रुका। जब वो नहा रहा था तो एक कौए ने उसका तेल का बर्तन लुढ़का दिया जिससे अधिकतर तेल गिर गया। व्यापारी मंदिर में गया और उसने देवता से क्षमा मांगी कि वो अपनी मन्नत पूरी नहीं कर पा रहा है। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर अय्यनार ने बर्तन में बचे हुए तेल की मात्रा को दुगना कर दिया और व्यापारी चढ़ावा चढ़ाने की अपनी मन्नत पूरी कर पाया।

अब व्यापारी देवी के मंदिर में गया, उसने देवी को पूरा किस्सा सुनाया और अपना वायदा पूरा न कर पाने के लिए क्षमायाचना मांगी क्योंकि उसके पास पर्याप्त तेल नहीं बचा था। देवी ने भी बर्तन में बचे हुए तेल की मात्रा दुगनी कर दी और व्यापारी वहां भी उतना ही चढ़ावा चढ़ा पाया। विनायक के मंदिर में भी ऐसा ही हुआ, तेल की मात्रा दुगनी हो गई और उसने मन्नत पूरी की; उसके बाद उसके पास ज़रा-सा भी तेल नहीं बचा।

अब सवाल यह है कि कौए के बर्तन पलटा देने के बाद उस बर्तन में कितना तेल बचा था?"

यह स्पष्ट है कि यह पहेली और हमारे गांव के पुश्तैनी नाई ने बुझाई पहेली एक जैसी ही हैं, केवल अंतर इतना है कि तमिलनाडु की पहेली में तीन ही देवता हैं और जवाब पूर्णांक में हो यह ज़रूरी नहीं है। स्वाभाविक सवाल है कि दो पहेलियां, एक बिहार से व दूसरी तमिलनाडु से, जो हज़ार किलो मीटर से भी ज़्यादा दूर हैं एक दूसरे से, इतनी एक समान कैसे हैं? क्या अन्य राज्यों व भाषाओं में भी ऐसी पहेलियां पाई जाती हैं? क्या यहां जो तरीके सुझाए गए हैं उनके अलावा भी और कुछ तरीके हैं इन्हें हल करने के? अगर इन सवालों पर आप भी रौशनी डाल सकें तो मुझे अच्छा लगेगा।

विजय शंकर वर्मा – दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र पढ़ाते है।

अनुभव

ये लाजवाब बच्चे

कमलेश चन्द्र जोशी

हम में से काफी लोगों का यह मानना है कि बच्चों को बचपन से सब कुछ हम ही सिखाते हैं, या बच्चे खुद से होकर कुछ सीखते भी हैं तो बहुत धीरे-धीरे। यदि बच्चों को थोड़ा और करीब से देखने की कोशिश करेंगे तो समझ आएगा कि बच्चे खुद से होकर भी सहजता से सीखते हैं, बस ज़रूरत है हम बड़ों को धैर्य रखने की।

मुझे ऐसा कई बार महसूस हुआ है कि बच्चों को सभी बातें सिखाने की सारी ज़िम्मेदारी हमारी नहीं होती। बच्चे हमारे साथ रहते हुए माहौल को देखकर बहुत सारी बातें अपने आप सीखते हैं। कई दफा बच्चों की जिन छोटी-छोटी बातों पर हम ध्यान नहीं देते या कभी सोच-विचार करना ज़रूरी नहीं समझते; वे छोटी-छोटी बातें ही कभी-कभी हमें उद्वेलित करती हैं और सोचने पर मजबूर करती हैं। बच्चों के साथ काम करते हुए हम जहां उन्हें सिखाते हैं, वहीं उनसे काफी बातें सीखते भी हैं। इस तरह सीखने-सिखाने की दो तरफा प्रक्रिया चलती रहती है। लेकिन जब हम उनके साथ काम करते हुए इन अनुभवों को महसूस करना बंद कर देते हैं वहीं हमारी रचनात्मकता में कमी आ जाती है और हमें यह सारा काम बोरियत भरा लगता है। इस बोरियत को दूर करने तथा अपने काम में ताज़गी बनाए रखने के लिए बच्चों की दुनिया पर ध्यान देना बेहद ज़रूरी होता है।

अनोखा कैरमबोर्ड

बच्चों के साथ महसूस किए गए कुछ अनुभवों से मुझे बच्चों को समझने में खासी मदद मिली है। अंकुर संस्था के एक केन्द्र पर बच्चों को रंग-बिरंगी कहानियों की किताबों से पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है। इस केन्द्र में नौ से दस वर्ष के बच्चे जुड़ते हैं जहां वे किताबों व कहानियों का आनंद लेते हैं। हमारे केन्द्र पर एक कैरमबोर्ड भी है। कैरम खेलने के लिए बच्चे हमेशा लालायित रहते हैं और इसके लिए उनमें कभी-कभी झगड़ा भी हो जाता है। असल में होता यह है कि कैरमबोर्ड पर एक समय चार बच्चे ही खेल सकते हैं, तो बाकी बच्चे कहां जाएं? इसलिए पहले खेलने के लिए अक्सर झगड़ा हो जाता है। इन झगड़ों को निपटाने के लिए हमें अपनी काफी ऊर्जा लगानी पड़ती है। इन सब झगड़ों से परेशान होकर हमने दूसरा एक आसान-सा हल निकाला। एक दिन हमने कैरमबोर्ड की सारी गोटियां छिपा दी और बच्चों से कह दिया कि सारी गोटियां खो गई हैं। इस तरह हमने उनका खेलना बंद करवा दिया। इस घटना के अगले दिन मैं क्या देखता हूं – विनोद नामक नौ साल का लड़का अपनी पुरानी कॉपी के गत्ते पर रंग-बिरंगी लाइन खींचकर, परकार से गोला बनाकर कैरमबोर्ड बनाकर लाया है। इसमें गोटियों की जगह उसने काले और सफेद बटनों

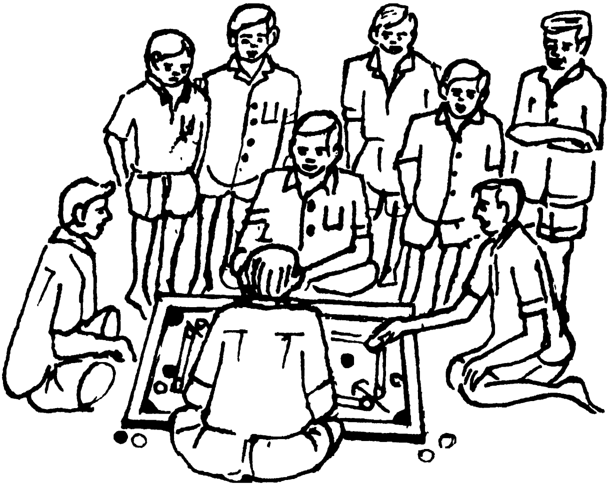

का इस्तेमाल किया। क्वीन गोटी की जगह गुलाबी रंग के बटन का इस्तेमाल किया, और तो और स्ट्राइकर की जगह स्वेटर के दो-तीन बड़े बटन जुगाड़ लाया। फिर वह अपने दोस्तों को बुलाकर उस गत्ते पर कैरम खेल रहा था। मैं यह देखकर अचंभित हुआ तथा मन-ही-मन खुश भी। और सोचने लगा कि हमने अपनी परेशानी से बचने के लिए गोटियां तो छिपा दी, लेकिन हम किसी की सृजनात्मता को तो समाप्त नहीं कर सकते। अब आप ही सोचिए कि उसने कैरमबोर्ड को बनाने के बारे में कैसे सोचा होगा? बटन इकट्ठे किए होंगे और साथ ही उसी दिन कैरमबोर्ड भी बना लिया। यहां पर इससे यह तो समझ में आता ही है कि जब सीखने की ललक होती है तो हम कितनी फुर्ती से काम कर लेते हैं?

विनोद के भीतर 'कबाड़ से जुगाड़' करने की गजब क्षमता है, ऐसा मैंने कई बार महसूस किया है। लेकिन उसकी इस क्षमता को हम विशेष रूप से उभार न सके क्योंकि हमारा ध्यान केन्द्र पर आने वाले अन्य छोटे बच्चों पर ज़्यादा रहता है।

गिंजाई या कनखजूरा

लक्ष्मण भी हमारे केन्द्र पर आता है। इस केन्द्र में हम एक बार बच्चों को किताब से 'चींटा मोची' नामक कहानी सुनाना चाह रहे थे। इस कहानी में एक शब्द आता है 'गिंजाई' जो एक कीड़े का नाम है। मैं काफी देर तक सोचता रहा कि 'गिंजाई' शब्द

शायद बच्चों के लिए कठिन होगा और शायद उनकी भाषा में इसका कोई और नाम हो। इसलिए इस कीड़े की जगह और कोई नाम सोच लें, जिसके बहुत सारे पैर होते हैं और जो बच्चों को आसानी से समझ में आ जाए। लेकिन मैं काफी देर तक सोचने के बाद भी कोई वैकल्पिक शब्द नहीं सुझा पाया।

फिर अगले दिन कहानी सुनाकर अंत में बच्चों पर ही छोड़ दिया कि "अच्छा तुम लोग बताओ किस कीड़े के बहुत सारे पैर होते हैं?" इस पर दस वर्षीय लक्ष्मण ने उत्तर दिया – "कनखजूरा।" मैं उसके उत्तर को सुनकर चकित था। जिसके लिए मैं कोशिश करके भी कुछ सोच नहीं पाया था उसका उत्तर लक्ष्मण ने तुरंत दे दिया। लेकिन होता यह है कि हम हमेशा यह मान लेते हैं कि बच्चे से ज़्यादा तो हमें आता ही है और कई दफा हम उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं देते। लेकिन वास्तव में बच्चे भी अक्सर उम्दा जवाब देते हैं इसलिए ज़रूरी है कि हम बच्चों की बातों पर ध्यान दें।

इसी तरह नौ साल के सलीम की चित्र बनाने में गहरी रुचि है लेकिन रंग भरने में नहीं। जब उससे पूछा कि तुम रंग क्यों नहीं भरते? तो उसका जवाब था कि रंग भरने से चित्र खराब हो जाता है, साफ नज़र नहीं आता। उसकी यह बात मेरे दिमाग में हमेशा चोट करती रहती है; सोचने पर मजबूर करती है कि सभी बच्चों को रंग भरना पसंद है, तो इसे क्यों नहीं? कारण जानने में मैं अभी तक असमर्थ रहा हूं।

सलीम ने किया लाजवाब

एक दिन मैं सभी बच्चों को खुशी-।-3 भाग-1 (कार्य-पुस्तिका) किताब से ताराबाई मोडक की कहानी 'खीरा खाऊं कचर कचर' सुना रहा था। इसके आगे की गतिविधि में मेरा इरादा बच्चों से चित्र बनवाने का भी था। इस कहानी को सुनाते हुए मैं बच्चों से बातें भी करता जा रहा था। सलीम को कहानी सुनने में बहुत मज़ा आ रहा था। वह सभी बच्चों को बता रहा था कि यह कहानी 'चुहिया लाई मटर का दाना' की तरह की कहानी है। उसका यह कहना बिल्कुल सही था। वह इस कहानी का मेल अपनी पहले सुनी कहानी से करने में सफल रहा था। मैं जो कहानी सुना रहा था उसमें एक कौआ भाजी के खेत में पहुंचकर खीरे खाना चाहता है, लेकिन खीरे की बेल उसे टरकाती है कि जाओ चोंच धोकर आओ। इस तरह कौआ क्रमशः बावड़ी, कुम्हार, खेत व हिरन के पास जाता है। वह हिरन से मिट्टी खोदने के लिए सींग मांगता है, जिससे कुम्हार मटका बनाएगा। कहानी में हिरण अपने सींग दे देता है, लेकिन यहां पर मैं रुककर बच्चों से पूछता हूं

कि अच्छा बताओ, कौआ अब किसके पास जाएगा, तो सलीम ने तुरन्त उत्तर दिया, "बढ़ई के पास जाएगा, आरी मांगने। तभी तो वह हिरण का सींग काट सकेगा। तब वह मिट्टी खोदेगा।" उसके उत्तर से मैं बहुत खुश हुआ। उसने न सिर्फ तुरन्त उत्तर दिया पर अपनी कल्पना के फलस्वरूप कहानी को विस्तार देने में भी सफल रहा। इस बात से मैंने यह भी जाना कि वह कितने ध्यान से कहानी सुन रहा था, तभी तो एकदम से उत्तर दे पाया।

मटका और टमका

इन्द्रजीत और भारत दोनों की उम्र पांच वर्ष है। वे भी हमारे केन्द्र पर नियमित रूप से आते हैं। इन्द्रजीत और भारत को शब्द लिखना सिखाने से पहले मैंने उनका हाथ खोलने के लिए स्वतंत्र आकृतियां बनवाईं। वे पतंग, पत्ता, फूल, लड़का, मटका आदि अपने आसपास की चीज़ें बनाने लगे। तब मैंने सोचा, क्यों न अब इन्हें लिखना सिखाया जाए? इन्द्रजीत ने जब पतंग बनाई तो मैंने उसे पतंग लिखकर बताया। कुछ दिनों बाद वह पतंग लिखना और पहचानना सीख गया। इसके बाद वह इन शब्दों का आकार देखकर तुरन्त बता देता कि यह मटका लिखा है, यह पतंग। फिर मुझे कुछ और जल्दी हुई और मैंने उसे एक नए शब्द से परिचित कराना चाहा, फूल से। लेकिन उसने मुझे तुरंत उत्तर दिया कि इसे नहीं बना पाऊंगा, यह नहीं आता। तब मैंने भी महसूस किया कि मैं जल्दी कर रहा हूं। अगर मैं 'प' या 'म' से कुछ और शब्द सिखाता और उन अक्षरों की पहचान कराता तो ज़्यादा अच्छा रहता। उसकी बात सुनकर मैंने उसे फूल लिखाने का

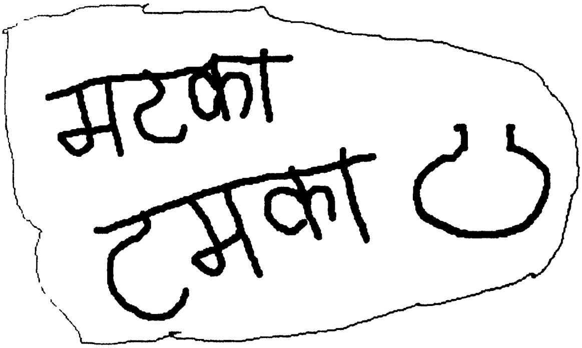

इरादा छोड़ दिया।

भारत भी लिखने की प्रकिया में है। उसने भी अभी दो शब्द सीखे हैं — पतंग और मटका। लेकिन वह मटका में 'ट' उल्टा लिखता है। मैं उसे मटका और पतंग लिखवा रहा था। उसने दोनों शब्द लिखकर दिखाए। फिर मैंने मटका की जगह 'टमका' लिखा और उससे पूछा, यह क्या लिखा है? उसने तुरंत उत्तर दिया — "मटका।" मैंने कहा — "यह भी मटका और टमका भी मटका।" तो उसने कहा— "यह (टमका) उल्टा लिखा है।" उसने इतना मज़ेदार उत्तर दिया, जिसकी मुझे बिल्कुल भी उम्मीद नहीं थी। असल में वह अपनी जगह बिल्कुल सही था क्योंकि वह खुद उल्टा लिखता है, उसे अभी शब्द में अक्षरों के क्रम का ज्ञान नहीं है, उसके लिए तो मटका और टमका दोनों ही मटका हैं।

अगर आप पूछेंगे तो वह बताएगा कि यह मटका है, आपने उल्टा लिखा है। लेकिन यहां हम यह जाने बगैर कि शुरुआती दौर में 'टमका' लिखवाने में बच्चों के मस्तिष्क में क्या बिम्ब बनेगा; यह शब्द बच्चे के लिए क्या माने रखता है; हम बच्चे को बताने लगते हैं कि यह 'टमका' लिखा है और उससे बुलवाएंगे टमका। लेकिन यदि यही करना है तो इससे अच्छा तो यह है कि बच्चे 'म', 'ट' और 'का' की पहचान करें और इससे बनने वाले कुछ सार्थक शब्द पहले सीखें।

सहयोग, सहभागिता. . . .

हमारे केन्द्र पर आने वाले बच्चे खुद ही कमरों में झाड़ू लगाते हैं, ब्लैकबोर्ड साफ करते हैं, चटाई बिछाते हैं। ये सभी छोटी-छोटी बातें हैं, बच्चे इन कामों को मज़े से करते हैं। इन कामों को करते हुए उनमें सहयोग और सहभागिता की भावना बढ़ती है। परन्तु अक्सर हम एक गलती करते हैं कि हम इन कामों को बच्चों के ही काम मान लेते हैं। इंतज़ार करते रहते हैं कि बच्चे आकर झाड़ू लगाएंगे, चटाई बिछाएंगे और ब्लैकबोर्ड साफ करेंगे। इससे बच्चों से हमारी दूरी का आभास होता है। जबकि होना यह चाहिए कि ये छोटे-छोटे काम भी बच्चों के साथ मिलकर करने चाहिए ताकि हमारे और उनके बीच एक समानता का रिश्ता बना रहे। यह रिश्ता हमारे सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को मज़बूती प्रदान करता है।

कमलेश चन्द्र जोशी: 'नालन्दा' शैक्षिक नवाचार केन्द्र, लखनऊ में कार्यरत हैं।

कहानी

द्वार पर

एंटोन चेखव

अनुवादः पुष्पा अग्रवाल

"ग्रिगोरिएफ के यहां से कोई एक किताब लेने आया था, मैंने कह दिया था कि आप घर पर नहीं हैं। डाकिया समाचार पत्र और दो चिट्ठियां दे गया है। और, साहब, मैं चाहती हूं कि आप सेरिओझा की ओर ध्यान दें। मैंने उसे आज सिगरेट पीते देखा था, और परसों भी। जब मैंने उससे कहा कि ये कितना गलत है तो, जैसा वो हमेशा करता है, उसने अपने कानों में अपनी अंगुलियां डाल लीं और ज़ोर-ज़ोर से गाने लगा, जिससे कि मेरी आवाज़ डूब जाए।"

यूजीन बिकोफ्स्की ने गवर्नेस की ओर देखा, जो उन्हें ये सब बातें बता रही थी, और हंस पड़े। वे ज़िला न्यायालय में वकील थे, और अभी-अभी न्यायालय से आकर, अपने अध्ययन कक्ष में अपने दस्ताने उतार रहे थे।

"अच्छा तो सेरिओझा सिगरेट पीता है!", उन्होंने अपने कंधे उचकाकर कहा, "सोचो भी मुंह में सिगरेट दबाए वो ज़रा-सा भिखमंगा! उसकी उम्र ही कितनी है।"

"सात साल का है। आपको ये बात मामूली लग रही है लेकिन उस उम्र में सिगरेट पीना बहुत ही बुरी बात है, एक नुकसानदेह आदत; बुरी लत को तो शुरू होते ही दबा देना चाहिए।"

"तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो। उसे तंबाकू कहां से मिला?"

"आपकी मेज़ से।"

"उसकी यह जुर्रत। ऐसा किया है तो उसे मेरे पास भेजो।"

जब गवर्नेस चली गई तो वे अपनी पढ़ने की मेज़ के पास आराम कुर्सी पर बैठ गए, और सोचने लगे। तम्बाकू के धुएं में घिरे, मुंह में एक बड़ी-सी सिगरेट, करीब एक गज़ लम्बी, लिए उनके अपने सेरिओझा की छवि उनके सामने उभर आई और यह कल्पना करते ही उन्हें हंसी आ गई। उसी समय गवर्नेस के गम्भीर परेशान चेहरे ने उनके बहुत पहले गुज़रे, भूले-बिसरे दिनों की यादें ताज़ा कर दीं, जब स्कूलों और शिशुघरों में सिगरेट पीना, अभिभावकों और शिक्षकों में एक विचित्र, न समझ में आने वाला खौफ पैदा कर देता था। वास्तव में खौफ ही था वह। बच्चों को निर्दयता से मारा जाता था और स्कूल से निकाल दिया जाता था, उनकी ज़िंदगी अस्त-व्यस्त हो जाती थी। हालांकि एक भी शिक्षक, या किसी भी पिता को धूम्रपान से होने वाली हानियों और अपराध का ठीक से ज्ञान नहीं था। अत्यन्त विद्वान लोग भी उस बुरी आदत को नेस्तानाबूद करने से नहीं हिचकते थे जिसे वो समझते तक नहीं थे।

बिकोफ्स्की को अपने स्कूल के

प्रिंसिपल याद आए, एक उच्च शिक्षित, अच्छे स्वभाव के बूढ़े व्यक्ति। जब कभी उन्हें कोई छात्र सिगरेट पीता दिख जाता, उनका रंग एकदम ज़र्द हो जाता, और वे तुरन्त ही स्कूल बोर्ड की मीटिंग बुलाकर उस छात्र को निष्कासित कर दिया करते थे। इसमें संदेह नहीं है कि यह समाज का एक नियम है – जिस बुराई को जितना कम समझा जाता है, उस पर उतना ही तीखा और सख्त प्रहार किया जाता है।

वकील को उन दो-तीन लड़कों की याद आई, जिन्हें स्कूल से निकाल दिया गया था। उनकी उसके बाद की ज़िंदगी ये दर्शाती थी कि अक्सर अपराध के कारण पनपने के बजाए बुराई सज़ाओं के कारण पनपती है।

इस तरह के विचार बिकोफ्स्की के दिमाग में आए – हल्के-फुल्के, क्षण भंगुर विचार जो केवल एक थके मांदे, आराम फरमा रहे मस्तिष्क में आते हैं। न तो यह समझ में आता है कि कहां से आ रहे हैं वे, न ही पता चलता है कि क्यों आ रहे हैं, और बस वे बहुत थोड़ी देर ही ठहरते हैं और मस्तिष्क की सतह पर फैलने से लगते हैं, बिना गहराइयों में उतरे। उन सब लोगों के लिए जिनके दिलो-दिमाग दिनों-दिन काम की ही बातें सोचने को मजबूर रहते हैं, जो हमेशा एक ही रास्ते पर चलते हैं – ये बाधा रहित विचार, एक तरह का सुकून और एक अलग ही तरह का खुशनुमा आराम देते हैं।

नौ बजे का समय था। ऊपर की मंज़िल पर कोई आगे-पीछे चल रहा था, और उसके भी ऊपर, यानी तीसरी मंज़िल पर चार हाथ प्यानो पर सरगम बजा रहे थे। जो आदमी लगातार चहल-कदमी कर रहा था, उसकी चाल से ऐसा महसूस हो रहा था कि या तो वो दुःखदाई विचारों से ग्रस्त है या फिर उसे दांत का दर्द है। उसकी कदम ताल और पिआनो के नीरस स्वरों ने, शाम के उस शान्त वातावरण में ऐसा उनींदापन भर दिया था जो मन को बेमतलब के विचारों की ओर बहाए जा रहा था।

वहां से दो कमरों की दूरी पर, बच्चों के कमरे में, सेरिओझा और उसकी गवर्नेस के बीच बातचीत चल रही थी।

"पापा आ गए हैं, पापा आ गए हैं, पापा," लड़का गा रहा था।

गवर्नेस कुछ चिल्लाई, जैसे डरी

हु इ चिड़िया चीं-चीं कर रही हो। "मुझे उसमे क्या कहना चाहिए?", बिकोफ्स्की ने सोचा। लेकिन इससे पहले कि क्या कहना है, ये सोचने का समय उसे मिलता, उसका बेटा कमरे में आ चुका था। वो एक ऐसा छोटा-सा बालक था, उसके कपड़ों से ही उसके लड़का होने का पता लगता था – अन्यथा वह बेहद कोमल, उजला और नाज़ुक-सा था। उसका सब कुछ आश्चर्यजनक रूप से बहुत कोमल और नाज़ुक दिखता था – उसकी चाल, उसके घुंघराले बाल और उसकी निगाहें "गुड ईवनिंग पापा", उसने बहुत शिष्टता से अपने

पिता के घुटनों पर चढ़कर फुर्ती से उनका गला चूमते हुए कहा, "आपने मुझे बुलाया था?"

"थोड़ा ठहरो, थोड़ा ठहरो बच्चे" वकील ने उसे अलग करते हुए कहा, "इससे पहले कि हम और तुम एक दूसरे को प्यार करें, हमें एक बात करनी है, एक गम्भीर बात। मैं तुमसे नाराज़ हूं, और अब तुम्हें प्यार नहीं करता। तुम समझ गए न, मैं तुम्हें प्यार नहीं करता और तुम मेरे बेटे भी नहीं हो।"

सेरिओझा ने अपने पिता की ओर एकटक देखा, फिर मेज़ की ओर देखकर कंधे उचकाए।

"मैंने क्या किया है?", उसने परेशान होकर, पलकें झपकाते हुए पूछा, "मैं तो आज एक बार भी आपके अध्ययन-कक्ष में नहीं गया, और मैंने किसी भी चीज़ को नहीं छुआ।"

"मिस नताली अभी मुझसे शिकायत कर रही थीं कि तुम सिगरेट पीते हो; ऐसा है क्या? तुम सिगरेट पीते हो क्या?"

"हां, मैंने एक बार पी थी।"

"तो, तुम अब झूठ भी बोल रहे हो।" वकील ने अपनी मुस्कान को, गुस्से में छिपाते हुए कहा, "मिस नताली ने तुम्हें दो बार सिगरेट पीते देखा है। इसका मतलब यह हुआ कि तुम तीन गलत काम करते पकड़े गये हो – सिगरेट पीया, मेरी मेज़ से तम्बाकू लिया जो तुम्हारा नहीं था, और झूठ बोला। तीन इल्ज़ाम हैं।"

"ओह हां! ..." सेरिओझा को याद आया और उसकी आंखें मुस्कुरा उठीं, "ये सच है, ये सच है! मैंने दो बार सिगरेट पी थी – आज और एक बार और।"

"यानी कि दो बार ऐसा किया था तुमने, एक बार नहीं। मैं तुमसे बहुत नाराज़ हूं। तुम अच्छे बच्चे हुआ करते थे, लेकिन अब बुरे और शैतान हो गए हो।"

बिकोफ्स्की ने सेरिओझा का छोटा-सा कॉलर सीधा किया और सोचा कि अब आगे उससे क्या कहना चाहिए।

"हां, ये बहुत गलत था।", उसने जारी रखा, "मैंने तुमसे ऐसी आशा कभी नहीं की थी। पहली बात तो तुम्हें तम्बाकू लेने का अधिकार ही नहीं था, क्योंकि वो तुम्हारा नहीं था। लोगों को सिर्फ अपनी ही चीज़ें इस्तेमाल करने का अधिकार होता है। अगर कोई आदमी दूसरे लोगों की चीज़ें लेता है, तो वह बुरा कहलाता है। (बिकोफ्स्की ने सोचा – 'मुझे उससे यह नहीं कहना चाहिए था।') उदाहरण के लिए, मिस नताली के पास एक सन्दूक है, जिसमें कपड़े हैं। ये सन्दूक उसका है। और हमें, यानी तुम्हें और मुझे, उसे छूने की हिम्मत नहीं करनी

चाहिए, क्योंकि ये हमारा नहीं है। तुम्हारे पास छोटे-छोटे घोड़े और तस्वीरें हैं। मैं उन्हें कभी नहीं लेता, लेता हूं क्या? शायद मैं लेना चाहूं, लेकिन वो मेरी नहीं हैं, वो तुम्हारी हैं।''

''अगर आप चाहें तो ले सकते हैं।'' सेरिओझा ने भौंहें चढ़ाते हुए कहा, ''निश्चिन्त रहिए पापा, आप उन्हें ले सकते हैं। वो छोटा पीला कुत्ता जो आपकी मेज़ पर है, मेरा है; लेकिन वो यहां रहे तो भी मुझे फिक्र नहीं है।''

''तुम मेरी बात समझ नहीं रहे हो,'' बिकोफ्स्की ने कहा, ''तुमने मुझे उपहार दिया था वो छोटा कुत्ता। अब वो मेरा है और मैं जो चाहूं इसके साथ कर सकता हूं। ('मैं उसे ठीक से समझा नहीं पा रहा हूं,' वकील ने सोचा) अगर मैं वो तम्बाकू पीना चाहूं, जो मेरा नहीं है तब पहले मुझे ऐसा करने के लिए इजाज़त लेनी होगी।''

और इस तरह धीरे-धीरे वाक्य से वाक्य जोड़ते हुए और बच्चे की तरह बातचीत करते हुए बिकोफ्स्की अपने बेटे को 'अपना अधिकार होने' का अर्थ समझाते रहे। सेरिओझा की आंखें, अपने पिता के सीने पर टिकी थीं और वो ध्यान से सुन रहा था। (शाम के समय उसे अपने पिता से बातें करना अच्छा लगता था।) फिर उसने कोहनियां मेज़ के किनारे पर रख दीं, और अपनी अधमिची आंखों से कागज़ और कलमदान को ध्यान से देखने लगा। उसकी नज़रें मेज़ पर घूमने लगीं और गोंद की बोतल पर आकर ठहर गईं।

''पापा गोंद किस चीज़ से बनती है?'' उसने अचानक बोतल को उठाकर अपनी आंखों के सामने लाते हुए पूछा।

बिकोफ्स्की ने बोतल उससे लेकर अपनी पहले वाली जगह पर रख दी और बात जारी रखी:

''और फिर तुम सिगरेट पीते रहे हो। यह सच में शैतानी की बात है। अगर मैं सिगरेट पीता हूं तो इसका मतलब यह नहीं कि सिगरेट पीना अच्छा है। जब मैं सिगरेट पीता हूं, तो जानता हूं कि ये मूर्खता है और मैं स्वयं से नाराज़ होता हूं, और ऐसा करने के लिए अपने आप को दोष देता हूं। ('ओह, मैं कैसा चालाक शिक्षक हूं!' वकील ने सोचा) तम्बाकू स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है, और इसे पीनेवाला जल्दी मर जाता है। ये और भी बुरा है, खासतौर पर जब सिगरेट पीने वाला तुम्हारे जितना छोटा हो तुम्हारा सीना कमज़ोर है, तुम अभी तक मज़बूत नहीं हुए हो; और तम्बाकू से कमज़ोर लोगों को क्षयरोग तथ अन्य बीमारियां हो जाती हैं। तुम्हारे चाचा इगनेशियस क्षयरोग से ही म

थे। अगर वो धूम्रपान नहीं करते तो शायद आज भी ज़िन्दा होते।"

सेरिओझा ने सोचते हुए लैम्प की ओर देखा, लैम्पशेड को छुआ और लम्बी सांस ली।

"चाचा इगनेशियस वायलिन बजाया करते थे," उसने कहा, "ग्रिगोरिएफ के घर में है वह वायलिन अब।"

सेरिओझा ने फिर से अपनी कोहनियां मेज़ के किनारे पर झुकाई और विचारों में खो गया। उसके चेहरे के भावों से लगता था कि वो कुछ सुन रहा है, या खुद अपने विचारों की शृंखला में खोया हुआ है। उदासी और डर जैसा कुछ, उसकी बड़ी-सी अपलक खुली आंखों में आया; वह शायद मृत्यु के विषय में सोच रहा था, जो कुछ ही समय पहले उसकी मां और चाचा को ले गई थी। मृत्यु मांओं और चाचाओं को दूसरी दुनिया में ले जाती है, और उनके बच्चे तथा वॉयलिन यहीं पृथ्वी पर रह जाते हैं। मृत लोग स्वर्ग में कहीं सितारों के पास रहते हैं और वहां से वे नीचे पृथ्वी को देखते हैं। क्या वो ये जुदाई बरदाश्त कर सकते हैं?

"मुझे उससे क्या कहना चाहिए?" बिकोफ्स्की ने सोचा, "वह सुन नहीं रहा है। यह तो स्पष्ट है कि वह अपने अपराध को कोई महत्व नहीं दे रहा, और न ही मेरे तर्कों को। मैं ऐसा क्या कह सकता हूं जो उसे छू जाए।" वकील उठा और कमरे में टहलने लगा।

वह सोच रहा था 'हमारे समय में ऐसे प्रश्नों का निपटारा करने का एक सरल तरीका था। अगर कोई छोटा बच्चा धूम्रपान करते पकड़ा जाता, तो उसकी ज़ोरों की धुनाई होती थी। डरपोक और कायर बच्चे वास्तव में

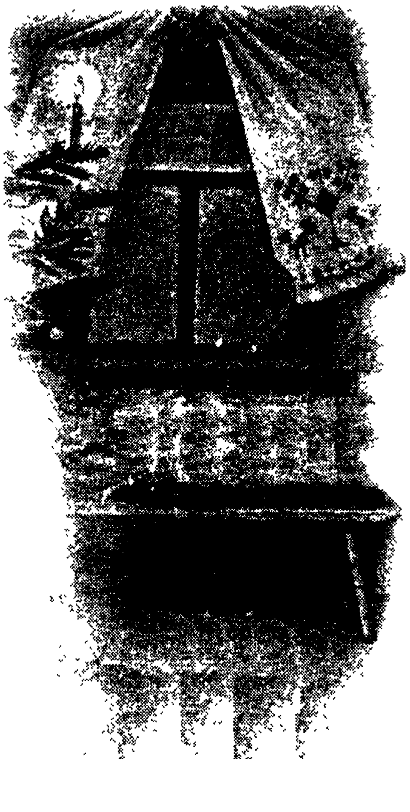

इससे धूम्रपान छोड़ देते थे, लेकिन चालाक और दिलेर लड़का पिटाई होने के बाद तंबाकू अपने जूते में छुपाकर रखता था और बाहर जाकर सिगरेट पीता था। अगर वहां भी पकड़ा जाता तो फिर से पिटाई होती, तब वह नदी के किनारे जा कर पीता था, और किस्सा इसी तरह चलता रहता जब तक कि वह बड़ा नहीं हो जाता था। मेरी मां धूम्रपान से दूर रहने के लिए मुझे मिठाई और पैसे देती थी। इस प्रकार के उपाय आज कमज़ोर तथा अनैतिक लगते हैं।

एक तार्किक दृष्टिकोण लेकर आज के शिक्षक बच्चे में 'सही व गलत' के प्रारम्भिक सिद्धांत बैठाने की कोशिश करते हैं तथा उन्हें समझने में बच्चे की मदद करते हैं – उसके डर को या पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा को जगाकर नहीं।

जब वो टहल रहा था और ध्यान मग्न था, सेरिओझा ऊपर चढ़ा और मेज़ के पास की कुर्सी पर खड़ा होकर चित्र बनाने लगा। मेज़ पर एक नीली पैंसिल और कागज़ों की गड्डी खासकर उसके लिए ही रखी गई थी जिससे कि वो किसी ज़रूरी कागज़ पर न लिखे और न ही स्याही को छुए।

"खाना बनाने वाली ने पत्तागोभी काटते हुए आज अपनी अंगुली काट ली," सेरिओझा ने भौंहें चढ़ाकर मकान का चित्र बनाते हुए कहा, "वो इतनी ज़ोर से चीखी कि सब डर गए और रसोई घर की ओर भागे। वो कितनी बुद्धू है! मिस नताली ने उससे अंगुली ठंडे पानी में डालने के लिए कहा लेकिन वो उसे चूसती रही। वो अपनी गंदी अंगुली अपने मुंह में कैसे रख सकती है। पापा ये ठीक नहीं था न?"

फिर वो बताने लगा कि कैसे एक बाजा बजाने वाला, शाम के खाने के समय उनके आंगन में आया। उसके साथ एक छोटी लड़की थी, जो संगीत के साथ नाच-गा रही थी।

"वो अपने ही विचारों में मग्न है," वकील ने सोचा। "उसके दिमाग में उसका अपना छोटा-सा संसार है। वह जानता है कि उसके लिए क्या महत्वपूर्ण है और क्या नहीं। कोई उसके ध्यान और चेतना को केवल उसकी भाषा की नकल करके धोखा नहीं दे सकता, खुद को उसी की तरह सोचने के योग्य भी होना चाहिए। वो मुझे ठीक से समझ गया होता, अगर मैं तंबाकू के लिए अफसोस करता, नाराज़ हो जाता और आंसू बहाने लगता। यही वजह है कि शिक्षा देने में मां का स्थान कोई और नहीं ले सकता क्योंकि वो बच्चों के साथ उस अनुभव को उसी तरह अनुभव कर सकती है, हंस सकती है और उन्हीं की तरह रो सकती है। तर्क और नीतिशास्त्र से कुछ हासिल नहीं किया जा सकता। ठीक है लेकिन

मैं उससे क्या कहूं।"

बिकोफ्स्की को यह बात बड़ी हास्याप्रद और विचित्र लगी कि उसके जैसा कानून का विद्यार्थी, जिसने आधी ज़िंदगी अपराध को रोकने और सज़ा के हर पहलू का अध्ययन करने में लगा दी, एक बच्चे से क्या कहना चाहिए, यह सोचने में पूरी तरह अयोग्य है।

"सुनो मुझे वचन दो कि तुम अब सिगरेट नहीं पियोगे," उसने कहा।

"वचन व-च-न . . ." सेरिओझा गाने लगा

'मुझे शक है कि वो तो वचन का मतलब भी नहीं जानता।' बिकोफ्स्की ने स्वयं से कहा, 'नहीं-नहीं मैं एक बुरा शिक्षक हूं।' अगर इस समय कोई शिक्षाविद या विधिवेत्ता मेरे सिर के अन्दर झांक के देखे, तो शायद मुझे बाल की खाल निकालने के लिए दोषी ठहराए। लेकिन तथ्य ये है कि इस प्रकार के मुश्किल सवाल घर के बजाए स्कूल में या न्यायालय में कहीं अधिक आसानी से हल हो जाते हैं। यहां घर में ऐसे लोगों के साथ सामना होता है, जिन्हें हम बेवजह बहुत प्यार करते हैं, और ये प्यार ही चीज़ों को मुश्किल और जटिल बना देता है। अगर ये बच्चा मेरा बेटा न होकर, मेरा शिष्य या कैदी होता, तो मैं इतनी कायरता से पेश नहीं आता और मेरे विचार भी इस तरह नहीं भटकते जैसा कि इस वक्त हो रहा है।

बिकोफ्स्की मेज़ पर बैठ गए और उन्होंने सेरिओझा का एक चित्र अपनी ओर खींचा, चित्र में – 'एक टेढ़ी-सी छत वाला छोटा-सा मकान था, जिसकी चिमनी से टेढ़ा-मेढ़ा धुंआ निकल कर ऊ प र

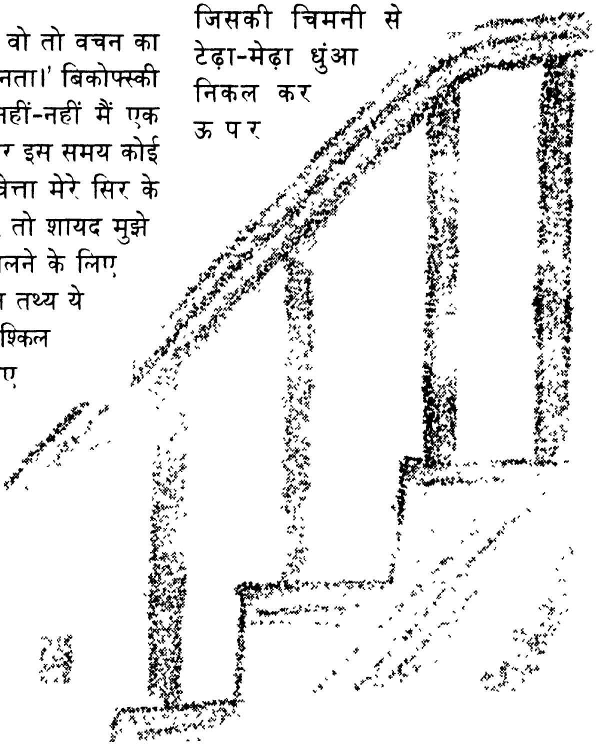

कागज़ के किनारे तक जा रहा था। घर के पास एक सिपाही खड़ा था, जिसकी आंखों की जगह दो बिन्दु बने हुए थे, और जिसकी संगीन चार के अंक जैसी थी।'

"कोई भी आदमी एक मकान से ऊंचा हो ही नहीं सकता, और देखो यहां तो तुम्हारे मकान की छत सिपाही के कंधे तक ही पहुंच रही है।" वकील ने कहा ।

सेरिओझा अपने पिता की गोद में चढ़ गया और देर तक कुलबुलाता रहा, वह आराम से बैठने की कोशिश कर रहा था।

"नहीं पापा," उसने अपने चित्र को ध्यान से देखते हुए कहा, "अगर सिपाही छोटा बना दिया तो उसकी आंखें नहीं दिखेंगी।"

मुझे उसकी गलती निकालने की क्या ज़रूरत थी? अपने बेटे को रोज़ देखकर वकील ने समझ लिया था कि आदिम लोगों की तरह बच्चों का भी अपना ही कलात्मक दृष्टिकोण होता है और उनकी अपनी अनोखी आवश्यकताएं होती हैं जो वयस्क बुद्धिमत्ता के क्षेत्र से परे होती हैं। बारीकी से देखने पर सेरिओझा एक वयस्क को असामान्य लगेगा क्योंकि उसे मकान से ऊंचा आदमी बनाना उचित और सम्भव लगा; उसने न सिर्फ अपने मन में आया विषय पैंसिल के हवाले किया पर उस विषय को देखने का अपना नज़रिया भी। इसी प्रकार उसने वाद्यवृन्द की आवाज़ को गोल धुंए के धब्बे, सीटी की आवाज़ को घुमावदार धागे से प्रदर्शित किया; ध्वनि, उसके मन में रंगों और शक्लों से गहन रूप से जुड़ी हुई थी। इसीलिए अक्षरों को भी वह उनकी ध्वनि के कारण एक रंग विशेष से रंगता था – 'ल' पीला, 'म' लाल, 'अ' काला और इसी तरह अन्य भी।

चित्र को एक ओर फेंककर सेरिओझा गोद में ही बैठे-बैठे इधर उधर हुआ, फिर आराम से बैठकर पापा की दाढ़ी की ओर ध्यान देने लगा। पहले उसने दाढ़ी को सावधानी से एकसार किया, फिर उसे अलग-अलग करके लंबी कलमों में बांट दिया।

"अब आप इवान स्टेपेनोविच लग रहो हो।" उसने धीरे से कहा, "और अब एक मिनट में आप दिखने लगोगे अपने चौकीदार की तरह।"

फिर उसने अगला सवाल दाग दिया, "पापा चौकीदार दरवाज़े पर क्यों खड़े होते हैं? डाकुओं को अन्दर आने से रोकने के लिये?"

वकील ने बच्चे की सांसें अपने चेहरे पर महसूस की, बच्चे के मुलायम बाल उसके गालों को छू रहे थे, और एक तृप्तता, एक कोमलता उसके हृदय में समा गई और उसे लगा मानो कि

सेरिओझा के सिर पर उसने अपना हाथ नहीं, बल्कि आत्मा ही रख दी हो।

उसने बच्चे की बड़ी-बड़ी काली आंखों की गहराइयों में देखा और उसे लगा मां, पत्नी और वो हर कोई जिसे उसने कभी प्यार किया था उन आंखों की

आसानी से आ जाते हैं। कोई व्यक्ति जितना अधिक प्रबुद्ध होगा वो उतना ही अधिक चिन्तन एवं नुक्ताचीनी करेगा, उसमें उतना ही अधिक नैतिक संकोच होगा, वह उतना ही अधिक अनिश्चित होगा और किसी भी काम को वह डरते-डरते करेगा। और अगर गंभीरता से सोचें, तो

पुतलियों में से झांक रहा है।

"उसे कोई कैसे पीट सकता है?" उसने सोचा, "कोई किस तरह उसे मज़ा दे सकता है? नहीं, हमें यह दिखावा नहीं करना चाहिए कि बच्चो को किस तरह शिक्षा देना, ये हम जानते हैं। पहले लोग अधिक सीधे होते थे; और सोचते भी कम थे, इसलिए वे अपनी समस्याओं को अधिक साहस के साथ सुलझा लेते थे। लेकिन हम लोग बहुत अधिक सोचते हैं और तर्क के झांसे में

हमें कितनी हिम्मत और अपने पर कितने ज़्यादा भरोसे की ज़रूरत नहीं होगी – किसी और को शिक्षा देने के लिए, या किसी बात के लिए फैसला सुनाने के लिए, या फिर एक भारी भरकम किताब लिखने के लिए।

घड़ी ने दस का घंटा बजाया।

''आओ बेटे सोने का वक्त हो गया,'' वकील ने कहा, ''गुडनाइट कहो, फिर जाओ।''

''नहीं पापा, मैं थोड़ी देर और ठहरना चाहता हूं, मुझे कुछ बताइए; अच्छा, एक कहानी सुनाइए।'' सेरिओझा ने कहा।

''बहुत अच्छा, लेकिन जैसे ही कहानी समाप्त होगी, हम सोने चले जाएंगे।'' जब भी शाम को वह व्यस्त नहीं होता वकील को अपने बेटे को कहानियां सुनाने की आदत थी। अधिकतर व्यस्त लोगों की तरह, उसे न तो कोई कविता याद थी और न ही वो कोई कहानी जानता था; इसलिये उसे हर बार तत्काल कुछ नया गढ़ना पड़ता था। सामान्यतः वह 'एक समय की बात है' से शुरू करता और फिर एक के ऊपर एक अर्थहीन मासूम घटनाओं का अम्बार लगाता जाता, शुरुआत करते समय उसे न तो मध्य का पता होता था, और न ही यह मालूम होता था कि अन्त में क्या होगा। दृश्य, चरित्र और घटनाएं वो कहीं से भी ले लेता था, और कथानक तथा सबक अपने आप आ टपकते थे, कहानी सुनाने वाले का उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता था।

सेरिओझा को ये आशु रचनाएं बहुत पसंद थीं। वकील ने ध्यान किया था कि कथानक जितना अधिक सीधा-सादा और सरल होता, वह सेरिओझा को उतना ही अधिक प्रभावित करता था।

''सुनो,'' उसने अपनी आंखें छत की ओर उठाते हुए कहा – ''एक समय की बात है, एक बूढ़ा, बहुत बूढ़ा राजा रहता था। उसके लम्बी, सफेद दाढ़ी और, ये बड़ी-बड़ी मूंछें थीं। यह राजा एक क्रिस्टल के महल में रहता था, जो सूर्य की रोशनी में बर्फ के एक बड़े-से टुकड़े की तरह चमकता और चारों ओर प्रकाश बिखेरता था। बेटे, ये महल एक बड़े से बगीचे में था, जिसमें संतरे और नाशपाती और चैरी और ट्यूलिप और गुलाब उगते थे, और भड़कीले रंग-बिरंगे पंछी वहां गाया करते थे। और हां, पेड़ों पर क्रिस्टल की छोटी-छोटी घंटियां टंगी रहती थीं। जब हवा चलती तो वे इतना मधुर स्वर देती थीं कि उन्हें सुनकर कोई कभी उकता नहीं सकता था।''

''क्रिस्टल धातु से अधिक कोमल और मधुर स्वर देता है। ठीक, और

यही नहीं, उस बाग में फव्वारे भी थे। तुम्हें याद है न तुमने एक बार सोनिया आंटी के घर में एक फव्वारा देखा था। उसी तरह के फव्वारे राजा के बाग में थे, पर बहुत-बहुत बड़े और उनकी फुहार सबसे ऊंचे पोपलर पेड़ की चोटी तक पहुंचती थी।''

बिकोफ्स्की ने एक क्षण सोचा और कहानी को आगे बढ़ाया – ''बूढ़े राजा के सिर्फ एक बेटा था जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी था। एक छोटा लड़का, बिल्कुल तुम्हारे जितना छोटा। वह एक अच्छा लड़का था; वह कभी भी मचलता नहीं था और वो जल्दी ही सो जाता था। अपने पापा की मेज़ से कोई भी चीज़ नहीं छूता था – और वो हरेक तरह से ही उ...तना अच्छा था, जितना ज़्यादा अच्छा वो हो सकता था। उसमें बस सिर्फ एक कमी थी – वह सिगरेट पीता था।''

सेरिओझा बहुत ध्यान से, पापा की आंखों में दृढ़ता से देखते हुए, सुन रहा था। वकील ने अपने आप से पूछा 'आगे किस तरह बढ़ाया जाए इसे?' वह बहुत देर तक सोचता रहा और फिर कहानी को इस तरह समाप्त किया:

''क्योंकि वह सिगरेट पीता था इसलिए राजा का बेटा बीमार हो गया, उसे क्षयरोग हो गया; और बीस साल की उम्र में वह मर गया। बूढ़ा राजा बीमार और कमज़ोर हो गया था, उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं बचा था, और उसके महल की रक्षा करने वाला या राज्य पर शासन करने वाला भी कोई नहीं रहा। दुश्मन आए, उन्होंने राजा को मार दिया और महल को नष्ट कर दिया, और अब न तो वहां बाग में चेरी के पेड़ बचे थे, और न कोई चिड़िया, और न ही घंटियां, और इसीलिए बेटे...।''

इस तरह का अन्त बिकोफ्स्की को कलाविहीन और बेहूदा लगा, लेकिन कहानी ने सेरिओझा पर गहरा प्रभाव डाला था। दुःख तथा खौफ जैसा कुछ एक बार फिर उसकी आंखों में झलका, वह एक मिनट तक अंधेरी खिड़की से बाहर देखता रहा और फिर धीमी आवाज़ में कहा,

''मैं अब और सिगरेट नहीं पीऊंगा।''

जब वह गुडनाइट कह कर सोने चला गया तो उसके पिता धीमे-धीमे फर्श पर चहलकदमी कर रहे थे, और मुस्कुरा रहे थे।

'यह कहा जाएगा कि इस किस्से में सुन्दरता और कलात्मक स्वरूप ही प्रभाव डालने वाले थे,' वह मनन कर रहा था, 'शायद ऐसा ही था, परन्तु यह कोई तसल्ली की बात नहीं। आखिरकार, प्रभाव डालने के वास्तविक साधन ये तो नहीं हो सकते। ऐसा क्यों होता है कि सत्य और सदाचार को उनके अनगढ़ रूप में प्रस्तुत न करके

मिश्रित चाशनी चढ़ाकर, कलई करके ही, मीठी गोली के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह उचित नहीं है। यह मिथ्याकरण, चालाकी और धोखा है।

उसे ज्यूरी के उन सब लोगों की याद आई जिनके सामने शुरुआती वक्तव्य में हर बार ज़ोरदार तकरीर करनी पड़ती थी; उसे जनता की याद आई जो इतिहास को केवल पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक उपन्यासों और कविताओं के माध्यम से ही आत्म-सात कर सकती है।

दवा को मीठा होना चाहिए और सत्य को सुंदर; आदम के ज़माने से यही इंसान की कमी रही है। फिर शायद यह एक बिलकुल कुदरती बात हो और ऐसा ही होना चाहिए। आखिर कुदरत के पास भी अपना काम बनवाने के कई होशियारी भरे तरीके हैं, कई प्रपंच हैं!

वह अपने काम पर फिर से बैठ गया, पर वो सुस्त घरेलू ख्यालात देर तक उसके मन में आते रहे। ऊपर से आने वाली सुरों की ध्वनि अब सुनाई नहीं पड़ रही थी – पर दूसरी मंज़िल के रहवासी की चहलकदमी जारी थी।

एंटोन पावलोविच चेखव (1860-1904) प्रसिद्ध रूसी नाटककार और लघु कथाकार। एक व्यापारी के पुत्र चेखव का जन्म 29 जनवरी, 1860 को यूक्रेन के टगनरोग में हुआ था। उन्होंने मॉस्को विश्वविद्यालय में चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा। जब वो पढ़ रहे थे तभी उनकी कई कहानियां प्रकाशित हो चुकी थी।

चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने के बावजूद उन्होने कभी-कभार ही इसकी प्रेक्टिस की। दरअसल इसलिए भी क्योंकि वे तपेदिक से ग्रसित थे और लेखक के रूप में काफी सफल हो चुके थे। उस दौर में तपेदिक एक असाध्य रोग था। 15 जुलाई, 1904 को उनका देहात हो गया।

अनुवाद: पुष्पा अग्रवाल। शौकिया अनुवादक, जयपुर में रहती है।

एक खबर

संदर्भ का यह अंक संयुक्तांक है; इसलिए इसकी कीमत 14 रुपए है। साथ ही यह अंक दो अंको के बराबर गिना जाएगा।

पुस्तक अंश

बच्चे कैसे सीखते हैं

जॉन होल्ट

अनुवादः सुशील जोशी

चित्र विप्लव शशि

"मुझे लगता है कि ज़्यादातर लोग शिक्षा का अर्थ लगाते हैं कि बच्चों को स्कूल नामक स्थान पर जाने को मजबूर किया जाए, और वहां वह सब कुछ सिखाया जाए जो वे नहीं सीखना चाहते, और यह डर दिखाया जाए कि यदि वे नहीं सीखते तो उनके साथ कुछ बुरा सलूक किया जाएगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि ज़्यादातर लोगों को यह खेल बहुत पसन्द नहीं आता और जैसे ही मौका मिलता है वे इसे खेलना बन्द कर देते हैं।"

30 जुलाई, 1961

छोटे बच्चे खेलों को पसंद करते हैं और वे किसी भी चीज़ को खेल बना सकते हैं। आज सुबह लिज़ा अपनी बड़ी बहन नेल के साथ बिस्तर में पड़ी थी। पहले नेल बिस्तर के ऊपर लगी लाइट को बंद कर देती; फिर लिज़ा उसे चालू करते हुए कहती,"बंद मत करना।" बड़ी बहन अपना हाथ लाइट की ओर आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाती। हर बार जब हाथ में हरकत होती तो लिज़ा कहती, "बंद मत करना।" यह सिलसिला काफी देर तक चलता रहता, और आखिर में लाइट बंद हो ही जाती। लिज़ा उसे फिर चालू कर देती और खेल एक बार फिर शरू हो जाता।

बच्चों के कई सारे खेल यूं ही संयोग से शुरू हो जाते हैं। एक दिन मैं एक पत्रिका लेकर कमरे में आया, उसे मेज़ पर रखा और किसी अन्य काम में लग गया। लिज़ा मेज़ के पास गई, उसने पत्रिका को उठाया और फर्श पर रख दिया। फिर मेरी ओर अर्थपूर्ण ढंग से देखा। मैं वापस गया पत्रिका को उठाया और उसे फिर से मेज़ पर रख दिया। लिज़ा ने उसे फिर वापस नीचे रख दिया। बस, एक उम्दा खेल शुरू हो गया जो काफी समय तक चला।

ऐसे खेलों के पीछे आनन्द, मूर्खता और मस्ती की भावना होनी चाहिए, जैसी कि सारे अच्छे खेलों में होती है। इसमें वह खेल भी शामिल है जिसमें यह खोजने की कोशिश होती है कि यह दुनिया चलती कैसे है, जिस खेल को हम शिक्षा कहते हैं।

> मुझे लगता है कि सभी लोग शिक्षा को इस रूप में नहीं समझते हैं। वे शिक्षा का अर्थ लगाते हैं कि स्कूल नामक स्थान पर जाने को मजबूर किया जाए, और वहां वह सब कुछ सिखाया जाए जो वे नहीं सीखना चाहते, और यह डर दिखाया जाए कि यदि वे नहीं सीखते तो उनके साथ कुछ बुरा सलूक किया जाएगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि ज़्यादातर लोगों को यह खेल बहुत पसन्द नहीं आता और जैसे ही मौका मिलता है वे इसे खेलना बन्द कर देते हैं।

बहरहाल यदि संकीर्ण अर्थों में भी लें तो भी लिज़ा के साथ जो भी

खेल मैंने खेले, वे शैक्षिक हैं। इनसे बच्चे को कार्य-कारण का, एक चीज़ के बाद दूसरी के आने का गहरा अहसास मिलता है। और इनसे बच्चे को यह महसूस करने में भी मदद मिलती है कि अपने आसपास की दुनिया पर कुछ असर डाल सकता है वो खुद . . .। किसी वयस्क के साथ खेल रहे एक बच्चे के लिए यह अहसास कितना स्फूर्तिदायक होता होगा कि कुछ तयशुदा चीज़ें करके वह उस सर्वशक्तिमान दानव से कुछ करवा सकता है, और जब तक चाहे इस सिलसिले को जारी रख सकता है।

एक मर्तबा मैं शिकागो में अपने दोस्त से मिलने गया था। एक सुबह मुझे थोड़ी देर के लिए उनके बच्चों – साढ़े तीन साल की एलिस और दो साल से थोड़े बड़े पैट्रिक को संभालना पड़ा। जिस गली में वे रहते थे वो काफी सुनसान-सी थी। दोनों बच्चे इसके फुटपाथ पर खेलने के आदी थे। सो मैंने उनसे कह दिया कि वे वहां खेल सकते हैं मगर आंखों से ओझल न हों। लेकिन जल्द ही वे ओझल हो गए और मुझे उन्हें पकड़कर लाना पड़ा। वे विरोध करते रहे, चिल्लपों मचाते रहे, वे उबल रहे थे। उन्होंने कहा कि मैं बुरा हूं और वे मम्मी से मेरी शिकायत करेंगे। मैंने उनसे कहा कि ज़रूर करो। पैट्रिक ने मुझे बताया कि मम्मी मुझे धौल जमाएंगी, ऐसे. . .। मैंने रोने का नाटक किया। यह खेल बच्चों के साथ सौ फीसदी कारगर होता है और सब बच्चों को यह खेल बहुत प्रिय होता है। छोटे बच्चे मुझे धौल जमाते, मेरी पीठ पर मारते और मैं रोने का नाटक करता। जब मैं रुक जाता तो पैट्रिक कहता कि मैं अभी भी तुम्हें धौल जमा रहा हूं, तो मुझे फिर रोना शुरू करना पड़ता। बीच-बीच में मैं कहता जाता कि मैं अच्छा लड़का हूं। इस पर पैट्रिक कठोरता से कहता, "बुरे लड़के. . ." यह तब तक चलता रहा जब तक कि उन्हें करने को कुछ और न मिल गया। बाद में हमने यह खेल बच्चों के माता-पिता को भी दिखाया।

1 अगस्त, 1961

हाल में लिज़ा ने कुछ उग्र खेल खेलना शुरू कर दिया है। वह अपने दांत दिखाते हुए, गुर्राती हुई, दहाड़ मारकर मेरी तरफ

लपकती है। मैं डरने का नाटक करता हूं और कुर्सी के पीछे दुबक जाता हूं। यह थोड़ी देर चलता है। इससे और उसकी अन्य गतिविधियों से ऐसा लगता है कि वह अपने अन्दर एक 'मैं' का अनुभव कर रही है जो ताकतवर हो रहा है, चीज़ें कर रहा है, चीज़ों की मांग कर रहा है। जिस खेल में यह 'मैं' ज़्यादा ताकतवर दिखे वह एक अच्छा खेल बन जाता है। अधिकांश समय वह यह बखूबी जानती है कि वह 'मैं' सचमुच कितना अशक्त है।

कभी-कभी वह एक छड़ी से कुर्सी की बैठक पर मारती है और मुंह से फटाक की आवाज़ निकालती है। कुर्सी पर चोट करते वक्त वह साथ में आंखें मीच लेती है, गोया कि उस चोट की शक्ति से वह खुद थोड़ी डर गई हो। इसे देखकर मुझे एक नौ वर्षीय लड़के की याद आई। उसने जब फुटबॉल खेलना शुरू किया था तो वह जब भी गेंद को किक मारता तो साथ में मुंह से ऐसी ही विस्फोटक आवाज़ निकालता था। मेरा ख्याल था कि वह अनजाने में ही ऐसा करता था। गौर करने लायक बात यह है कि न तो वह बड़े डीलडौल का था और न ही उसका शरीर एथलेटिक था और वह गेंद को बहुत ज़ोर से किक नहीं मार पाता था; यदि वह ज़ोरदार किक मार पाता तो विस्फोटक आवाज़ की ज़रूरत भी न पड़ती।

सारी उग्रता, घमंड और जिद्दी आत्म निर्भरता एक तरफ मगर लिज़ा दिल से बहुत दयालु और परोपकारी है। उसका एक पसन्दीदा खेल है 'तुम नहीं कर सकते'। कई मर्तबा इस खेल में मैं दरवाज़े के बाहर होता हूं और वह अन्दर। वह कहती है 'अन्दर नहीं आ सकते'। मैं धीरे-धीरे दरवाज़े को खींचना शुरू करता हूं। वह दूसरी ओर से पूरी ताकत से खींचती है। थोड़ी देर बाद मैं छोड़ देता हूं मानो थक गया हूं। दरवाजा खटाक से बन्द हो जाता है। वह मेरी ओर एक विजयी नज़र उछालती है और फिर से कहती है 'तुम अन्दर नहीं आ सकते'। मैं एक बार फिर दरवाज़ा खोलने की कोशिश करता हूं, वह फिर से प्रतिरोध करती है और अन्ततः मैं छोड़कर दरवाज़े को बन्द हो जाने देता हूं। ऐसा पांच-छः बार होता है। परन्तु अंत में हमेशा वह बहुत प्रेम से मुझे अन्दर आने देती है। कहती है, 'जॉन, अन्दर आ जाओ।' एक दिन सुबह-सुबह उसे अपनी बहन से बात करते सुनकर मैं अन्दर चला गया। उसने मेरी

तरफ चुलबली नज़र डाली और कहा "चले जाओ।" मैंने पूछा, "क्यों?" तो उसने कहा, "क्यों क्या? तुम्हें जाना होगा।" मैंने एक बार फिर कहा कि मैं जाना नहीं चाहता। "तुम्हें जाना चाहिए।" यह जाना होगा से ज़्यादा बल रखता है। मैंने एक बार फिर कहा कि मैं जाना नहीं चाहता। तब एक अजीब-सी बात हुई – उसने कहा, "तुम नहीं रुक सकते।" अब उसने उत्तरों का वह पैटर्न अपना लिया था, जिसका उपयोग वह कई परिस्थितियों में करती है। लगभग इसी समय मैं कमरे से बाहर आ गया। एक क्षण बाद ही मैं वापस कमरे में था और बस, खेल शुरू हो गया। दो चार बार खेलने के बाद उसने कहा, "बाहर मत जाओ।"

हम वयस्कों को दो-चार बार जीतने देने में बच्चों को कोई ऐतराज़ नहीं होता बशर्त्ते कि हम उन्हें भी कुछ अंक स्कोर करने दें। परन्तु हममें से कई लोग, मसलन फुटबाल के कुछ कोच, मात्र जीतकर संतुष्ट नहीं होते; हमें तो विशाल स्कोर की हवस होती है।

2 अगस्त 1961

एक दिन हम कार्ल्सबैड कैवर्न गए। एक अजीब-सी खूबसूरत जगह है। वहां पहुंचने के लिए हमें कई घण्टे कार में सफर करना पड़ा। रास्ते में हमने खेल खेले। रेडियो चल रहा था। मैंने संगीत की लय के साथ ताली बजाना शुरू कर दिया। लिज़ा देख रही थी। उसने भी वैसा ही किया। फिर मैंने एक हथेली से दूसरी मुट्ठी पर ताली देना शुरू कर दिया। उसने थोड़ी देर देखा और फिर दोनों हाथों की मुट्ठी बनाकर ताली बजाने लगी। थोड़ी देर ऐसा करने के बाद उसने फिर से देखा। वह समझ गई कि वह सही नहीं कर रही है, और जल्दी ही हूबहू वही करने लगी जो मैं कर रहा था। इसमें से खेलों का एक पूरा काफिला निकल पड़ा। मैंने अपनी हथेली से सिर पर ताली बजाई, उसने भी वही किया। मैंने अपने हाथ से पेट पर ताली बजाई, उसने भी किया। मैं अपने खेल और पेचीदा बनाता गया। एक हाथ से सिर पर और दूसरे से पेट पर ताली बजाने लगा, या एक हाथ से सिर पर ताली बजाते हुए दूसरे हाथ से कोहनी को पकड़ लिया वगैरह, वगैरह। दिलचस्प बात यह थी कि मैं जो भी

करता, वह उसकी नकल उतार देती थी। हर बार वह जल्दी से कुछ करना शुरू कर देती। फिर करते-करते वह जांचती कि मैं जो कर रहा हूं और वह जो कर रही है उनमें तालमेल है या नहीं। फिर वह अपनी क्रिया में परिवर्तन करती, फिर से जांचती, और ऐसा तब तक करती जाती जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि हम दोनों एक-सी हरकत ही कर रहे हैं। उसे ऐसा करते देखकर मेरे ज़ेहन में दो बातें कौंधी। पहली तो यह कि कुछ भी शुरू करते वक्त उसे यह ख्याल परेशान नहीं करता कि उसे पूरा सही ही करना है। वह तैयार थी कि कुछ करके शुरुआत की जाए और फिर सोचा जाए कि इसे ठीक कैसे करें। तैयार ही नहीं बल्कि वह तो उत्सुक थी शुरुआत करने के लिए। दूसरी बात कि वह एक त्रुटिपूर्ण नकल से संतुष्ट नहीं होती थी अपितु तब तक देख-देखकर तुलना करती जाती जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि वह सही कर रही है। और लगभग हर बार वह ऐसा कर पाती थी।

कोई बड़ा बच्चा शायद इस खेल को थोड़ा अलग ढंग से खेलेगा और शायद पहली बार में ही सही नकल उतार देगा। वह यह नकल वास्तव में करने से पहले, मन में करके जांच सकता है कि क्या वह सही कर रहा है? या वह मेरी हरकत (क्रिया) को शब्दों में व्यक्त करने के बाद अपनी हरकत को उन शब्दों के अनुरूप कर सकता है। परन्तु बहुत छोटे बच्चे, कम से कम लिज़ा तो इस तरह काम करती नहीं दिखती। वे कल्पना में कोई क्रिया करके उसे वहीं ठीक नहीं कर सकते। उन्हें तो नकल, तुलना और त्रुटिसुधार, सब कुछ ठोस या शारीरिक स्तर पर ही करना होता है, और तब तक करते जाना होता है जब तक कि ठीक न हो जाए।

एक अर्थ में – दरअसल कई अर्थों में से एक में – लिज़ा स्कूल के कई दस वर्षीय असफल बच्चों से अलग है। वह काम को सही ढंग से करना चाहती है और जब तक न कर ले तब तक उससे चिपकी रहती है। दूसरी ओर वे बच्चे तो बस चाहते हैं कि किसी तरह खत्म करके छुटकारा पाएं। लगता है बहुत छोटे बच्चों में वह चीज़ होती है जिसे कारीगरी की नैसर्गिक प्रवृत्ति कह सकते हैं। हम इसे देख नहीं पाते क्योंकि वे अकुशल होते हैं और उनकी सामग्री अपरिमार्जित होती है। परन्तु कभी यह देखिए कि कोई छोटा बच्चा कितने प्रेम से

मिट्टी की रोटी बनाता है और हौले-हौले थपथपा कर रेत को आकार देता है। उनकी कोशिश होती है कि इसे अच्छे से अच्छा बनाएं – किसी और को खुश करने के लिए नहीं बल्कि अपने आपको संतुष्ट करने के लिए।

3 अगस्त 1961

लिज़ा को देखकर मुझे प्रायः बिल हल की वह कहानी याद आ जाती है जिसमें छः साल का पहली कक्षा में पढ़ने वाला एक बच्चा यह सुनकर रो पड़ता है कि की Once की स्पेलिंग O-N-C-E होती है। जो बात मुझे उलझन में डालती है, वह यह है कि क्यों छः वर्षीय बच्चे, इस तरह की गड़बड़ियों व विरोधाभासों को लेकर कहीं ज़्यादा व्यग्र हो जाते हैं। लिज़ा दिन भर ऐसी बातें सुनती है जो उसके लिए कोई मायने नहीं रखती, मगर वह चिंतित नज़र नहीं आती। वह अनिश्चितताओं के बीच इतनी सहजता से रहती और विचरती है जैसे कि पानी में मछली। कब और क्यों बच्चों में निश्चितता की चाह उत्पन्न होती है?

ऐसा लगता नहीं कि बच्चे डरे हुए पैदा होते हैं। हां, कुछ चीज़ें ज़रूर हैं जिनसे वे नैसर्गिक रूप से डरते हैं, जैसे ऊंची आवाज़ें या सहारे का अभाव। हालांकि कई बच्चों को यह बहुत अच्छा लगता है कि आप उन्हें हवा में उछालें या गुलाटें खिलाएं। ऐसा लगता है कि बच्चे अपने ज़्यादातर डर अपने बड़ों से अर्जित करते हैं।

मसलन लिज़ा कभी कीड़ों से नहीं डरती थी। जैसे ही उसे कोई रेंगती हुई या उड़ती हुई चीज़ दिखती वह उसे पकड़कर देखना चाहती थी। एक दिन उसकी बड़ी बहन से मिलने एक दस वर्षीय सहेली आई। लिज़ा दोनों बड़ी लड़कियों के साथ कमरे में थी, तभी सहेली को एक कोने में मकड़ी दिखाई पड़ी। वह ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी। उसे कमरे से बाहर ले जाया गया और मकड़ी को मार डाला गया। तब कहीं जाकर वह चुप हुई। उसके बाद से लिज़ा हर तरह के कीड़ों, मक्खी, दीमक, केंचुए सभी से डरने लगी। वह चीखती तो नहीं, बस उनसे दूर हट जाती है और उनसे कोई मतलब नहीं रखना चाहती। दुनिया के बारे में उसकी जिज्ञासा और

दुनिया में उसके विश्वास का एक अंश सो गया। पता नहीं अब यह कब जगेगा।

अधिकतर डर जो बच्चे अर्जित करते हैं वह ज़्यादा सूक्ष्म किस्म का होता है। वे इसे टुकड़े-टुकड़े में, थोड़ी-थोड़ी खुराक में ग्रहण करते हैं। एक दिन लिज़ा पोर्टेबल इलेक्ट्रिक टाइप राइटर से खेल रही थी। वह इसे बन्द चालू कर लेती है और कैरिज रिटर्न को चला लेती है। टाइपिंग करते-करते अचानक उसकी इच्छा हुई कि दोनों हाथों से बटनों को दबाया जाए। कई सारी कुंजियां उछली और उलझ गईं। वह कुंजीपटल पर झुकी और उन्हें पीछे खींचा। मुझे लगा कि अगर अक्षर कुंजियों को पीछे खींचते वक्त उसने कुंजीपटल का एकाध बटन दबा दिया तो कोई अक्षर कुंजी उछलेगी और उसकी उंगली में चोट लग जाएगी। मुझे यह भी डर था कि अक्षर कुंजियों को खींचते वक्त कहीं वह एकाध को मोड़ न दे। लिहाज़ा मैंने उसे एक मर्तबा फिर दिखाया कि मशीन को कैसे बन्द करते हैं और फिर कैसे उलझी हुई कुंजियों को सावधानी से अलग-अलग करते हैं ।

लिज़ा ने कुछ रोचक खोजबीन की। कुंजीपटल के दोनों तरफ एक-एक शिफ्ट लॉक होता है। उसने देखा कि जब आप शिफ्ट बटन को दबाकर छोड़ते हैं तो वह वापस ऊपर आ जाता है। परन्तु जब आप शिफ्ट लॉक को दबाकर छोड़ते हैं तो वह नीचे रहता है और साथ में शिफ्ट बटन भी। तो समस्या यह थी कि इन्हें वापस ऊपर कैसे लाया जाए। खींचने से तो कुछ होता नहीं। थोड़ी देर बाद उसने पता लगा लिया कि यदि वह शिफ्ट बटन को नीचे की ओर दबाए तो शिफ्ट लॉक खुल जाता है और दोनों बटन ऊपर आ जाते हैं। अब उसने दाईं ओर देखा कि क्या वहां भी ऐसा कोई बटन है। मार्जिन रिलीज़ बटन को दबाने से ऐसा कुछ नहीं हुआ जो उसे दिखाई दे। परन्तु टेबुलेटर बटन दबाते ही जब कैरिज पूरा सरककर दूसरी ओर पहुंच गया तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। और ऊपर से घंटी बजी सो अलग। कुछ और इसी तरह के प्रयोग करके उसने शिफ्ट बटन और लॉक बटन की पूरी प्रणाली को खोज निकाला ।

इस पूरे वाकए के दौरान मैं करीब दस फुट दूर एक तरफ खड़ा

था। मैं देखना चाहता था कि वह क्या कर रही है। मेरे मन में यह भी था कि यदि वह फिर से सारे बटन दबाएगी या ऐसा कुछ करेगी जिससे उसे या मशीन को नुकसान हो, तो मशीन बन्द कर दूंगा। मेरा ख्याल था कि मैं चिन्तित नहीं था, मात्र सतर्क था। परन्तु लिज़ा ने मेरी सतर्कता में चिन्ता की कुछ झलक देखी होगी, क्योंकि मशीन के साथ खेलते हुए उसने ऐसा कुछ किया जो उसने छुटपन में कभी नहीं किया था। वह मेरी ओर चेहरे पर एक ऐसा भाव लिए देख रही थी मानो पूछ रही हो, क्या यह करना ठीक है?

बच्चे, खासकर छोटे बच्चे भावनाओं के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। वे न सिर्फ हमारी भावनाओं को ताड़ लेते हैं, बल्कि उन्हें कई गुना बढ़ा भी लेते हैं। यदि लिज़ा के बड़े भाई या बहन किसी गंभीर तकरार में उलझ जाएं, तो वह रोने लगती है। यदि वे मज़ाक में भी हाथापाई करने लगें, तो वह उन्हें 'बंद करो, बंद करो' चीखते हुए अलग-अलग करने की कोशिश करती है। अन्य परिवारों में मैंने कई बार देखा है कि अभिभावकों की तकरार की वजह से बच्चे कई-कई दिन तक मायूस रहते हैं, हालांकि अभिभावक अपनी तकरार को छिपाने की भरसक कोशिश करते हैं। एक मर्तबा मैं अपने मित्रों के घर गया। उनके बच्चों से मैं अच्छी तरह परिचित था और उनसे बहुत प्रेम भी करता था। उनकी मां और मेरे बीच राजनीति को लेकर बहस हो गई। यह बहस गर्मागरम ज़रूर थी मगर गैर-दोस्ताना नहीं थी।

आमतौर पर हम एक ही पक्ष में रहते हैं। परन्तु बहस की इतनी गर्मागरमी ही बच्चों के लिए थोड़ी ज़्यादा हो गई। वे समझौता कराने की तर्ज पर हमारे इर्द-गिर्द आ गए। शायद उनका ख्याल था कि यदि हमें सोचने को कुछ और मिल जाएगा तो हमारा ध्यान इस झगड़े से हट जाएगा और सब कुछ फिर से खुशनुमा और आनन्दमय हो जाएगा ।

यह सच नहीं है, कम से कम यह सदैव सच नहीं है कि बच्चों में सहानुभूति नहीं होती या वे दूसरों की भावनाओं को महसूस नहीं कर सकते। यह सही है कि वे प्राय: एक-दूसरे के प्रति क्रूर हो जाते हैं, मगर यदि वे किसी ऐसे बच्चे के पास हों जो बुरी तरह घायल

है या मायूस है, तो जल्दी ही वे खुद भी बेचैन हो जाते हैं। कोई बिरला ही बच्चा होगा जो लगातार, सायास क्रूरता का प्रदर्शन करे जैसा कि वयस्क प्राय: करते रहते हैं।

जॉन होल्ट: दुनिया के जाने माने शिक्षाविद; काफी घुमक्कड़ प्रवृति के इंसान थे। तमाम लोग शिक्षक का पेशा इसलिए अपनाते हैं क्योंकि उनके पास जीवन में कोई विकल्प नहीं होता। दुनिया में ऐसे खुशनसीब कम ही हैं जो अपने शौक और सपनों के ज़रिए अपनी आजीविका चला पाते हैं। होल्ट उन बिरले लोगों में से थे जिन्होंने अपने शौक को अपना पेशा बनाया।

1964 में उनकी किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' छपी। इसने शिक्षा जगत में तहलका मचा दिया। यह दरअसल उनकी डायरी का एक अंश थी। इस डायरी में वे बच्चों के करतबों और हरकतों को दर्ज़ करते जाते थे।

1975 में होल्ट स्कूल में बदलाव लाने की बजाए 'स्कूल बंद करो' के पक्षधर हो गए। होम स्कूलिंग को बढ़ावा देने के लिए इसी साल उन्होंने 'ग्रोइंग विदाऊट स्कूलिंग' द्विमासिक पत्रिका की शुरुआत की।

1982 में उनकी बाईं जांघ में ट्यूमर हो गया। 14 सितम्बर को उनका देहांत हो गया।

प्रस्तुत अंक उनकी एक अन्य किताब 'हाउ चिल्ड्रन लर्न' के कुछ अनुवादित अंश हैं।

अनुवादक सुशील जोशी पर्यावरण एवं विज्ञान लेखन में स्वतंत्र रूप से सक्रिय हैं; एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से भी संबद्ध हैं।

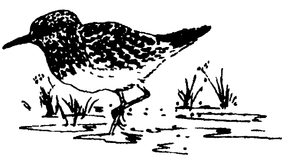

समुद्री घोड़ा: दिखता वैसा ज़रूर है लेकिन यह कोई घोड़ा नहीं बल्कि एक मछली है। यह गलफड़ों से सांस लेता है और तैरने के लिए इनके पास पंख (Fins) होते हैं। पूरी दुनिया में इसकी करीब 30 प्रजातियां हैं; कुछ तो एक फुट तक लंबे हो जाते हैं और कुछ इनकी तुलना में काफी छोटे।
ये मछली के समान चपल न होकर काफी बुरे तैराक हैं। इसलिए शिकार को पीछा करके नहीं पकड़ते, या फिर अपने बचाव के लिए भी नहीं भाग पाते। ये इंतज़ार करते हैं कि कोई छोटा जंतु इनके पास से गुज़रे – अपनी टोंटी जैसी लंबी नाक को चूषक की तरह इस्तेमाल करते हुए ये इस जंतु को अपने भीतर खींच लेते हैं। इसी तरह अपने बचाव के लिए ये रंग बदलकर अपने आसपास के वातावरण से घुलने मिलने की प्रक्रिया अपनाते हैं।

12749